हिन्दू त्योहारों का इतिहास

समस्त जरूरी त्योहारों की उत्पत्ति और उनके
सम्बन्ध में प्रसिद्ध आख्यायिकाओं का
अपूर्व संग्रह

लेखक—

श्रीयुत शीतलासहाय जी, बी० ए०

प्रकाशक—

'चाँद' कार्यालय,
इलाहाबाद

जनवरी, १९२९

तीसरा संस्करण, २०००] [मूल्य १।) रुपया

THIRD EDITION

Two Thousand Copies

Printed and Published

by

R. SAIGAL

at

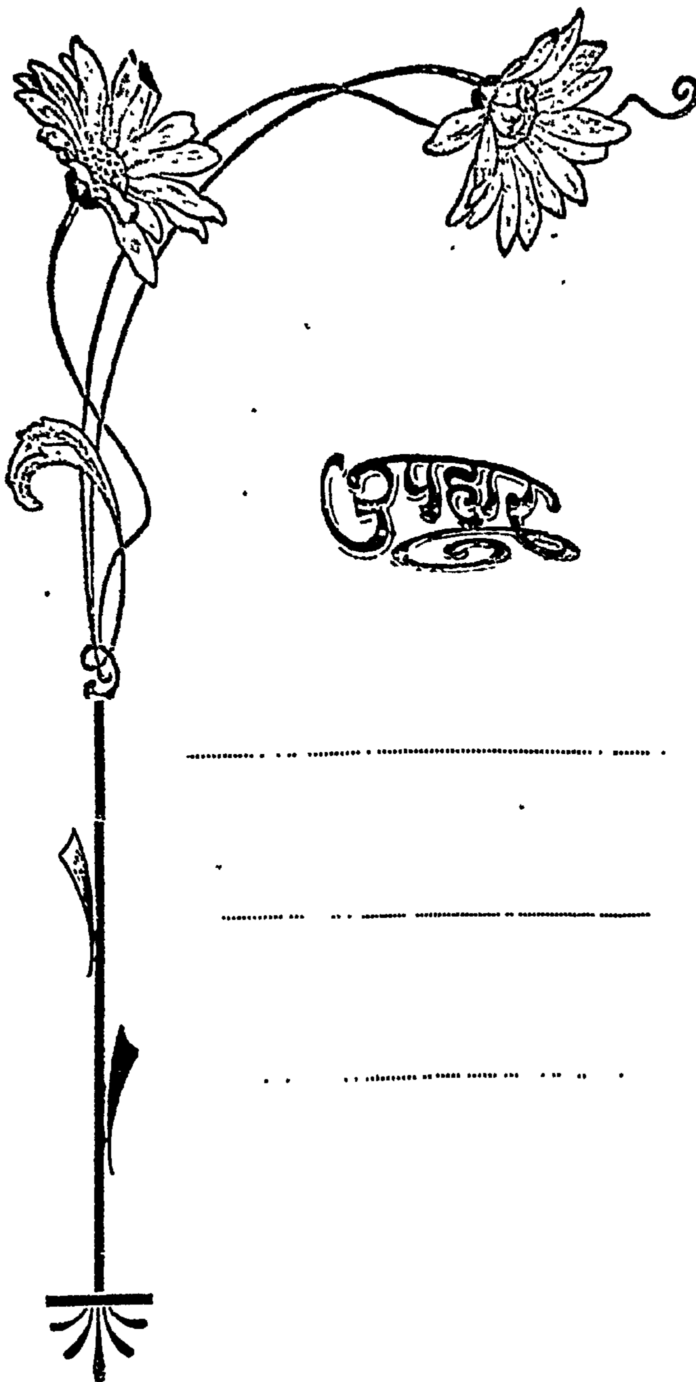
The Fine Art Printing Cottage

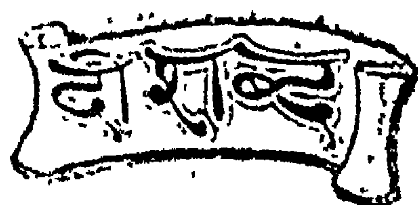
28, Elgin Road

Allahabad

January

1929


उपहार



हिन्दू-समाज में त्योहारों का बड़ा मान है। हमारा तो ख़्याल है कि भारतवासी जिस भक्ति और श्रद्धा से अपने त्योहार मनाते हैं शायद, ही भूमण्डल की कोई जाति अपने त्योहारों को इतना महत्व देती होगी। लेकिन यह बात स्पष्ट है कि ९९ प्रतिशत स्त्री-पुरुष इन त्योहारों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में बिलकुल अनभिज्ञ हैं। वे न तो इनकी उत्पत्ति का कारण ही जानते हैं और न महत्व ही। यद्यपि विषय इतना ज़रूरी है, किन्तु हिन्दी-भाषा में ऐसी एक पुस्तक भी हमारे देखने में नहीं आई।

वर्तमान पुस्तक के सुयोग्य लेखक ने महीनों कठिन परिश्रम करके और भाँति-भाँति की धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन करके ही लेखनी उठाई है। वे किस उत्तमता से और कितनी सरल भाषा में यह पुस्तक हिन्दी-संसार में उपस्थित कर सके हैं, सो पाठक-पाठिकाएँ ही देखेंगी। यदि पुस्तक उपयोगी सिद्ध हुई तो लेखक तथा प्रकाशक दोनों ही अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

—विद्यावती सहगल

विषय-सूची

त्योहारों का इतिहास

एकादशी

हर मास में यह दो दफ़ा होती है। प्रत्येक पाख के ग्यारहवें दिन पड़ती है। साल के हर एक महीने की एकादशियों के माहात्म्य और उनकी उत्पत्ति के कारण जुदा-जुदा हैं। एकादशी का व्रत निर्जल भी होता है और सजल भी। इस व्रत में रात्रि को जागरण करने का भी विधान है।

एकादशी की उत्पत्ति का कारण भविष्यपुराण में यह बताया गया है कि सतजुग में मुर नाम का एक दानव हुआ था। इस दानव ने समस्त देवताओं को हरा दिया। इन्द्र को भी इन्द्रासन से गिरा दिया। इस पर तमाम देवता दुखी होकर पृथ्वी पर फिरने लगे। इन्द्र ने देवताओं की यह बुरी अवस्था देखकर शिव जी से सारा वृत्तान्त कह सुनाया। शिव जी ने देवताओं को विष्णु के

पास जाने की सलाह दी। देवताओं ने विष्णु से क्षीर-सागर में मुलाक़ात की और उनसे सहायता माँगी। विष्णु को देवताओं की दुर्दशा का हाल सुनकर क्रोध आ गया और मुर से लड़ाई करने को तैयार हो गए। विष्णु ने अपने बाणों से तमाम दैत्यों को मार डाला; किन्तु मुर को न हरा सके। उन्होंने अपने शस्त्रों को मुर के शरीर पर बिलकुल निष्प्रभाव देख कर यह निश्चय किया कि मुर से मल्ल-युद्ध किया जाय। एक हज़ार वर्ष के मल्ल-युद्ध से थक कर विष्णु रण-क्षेत्र से भाग निकले और बदरिकाश्रम की एक गुफा में जाकर सो गए। मुर ने विष्णु का पीछा किया और ढूँढ़ते-ढूँढ़ते बदरिकाश्रम में पहुँचा। यहाँ विष्णु को सोते हुए देख कर उसने यही विचार किया कि अब विष्णु को मार ही डालना चाहिए। मुर की इस दुर्मति को देख कर विष्णु के शरीर से एक महा-तेजयुक्त कन्या उत्पन्न हुई। वह देवी अच्छे-अच्छे शस्त्र लेकर मुर से युद्ध करने के लिए उपस्थित हो गई। देवी ने थोड़ी ही देर में उस दानव को रथ-विहीन कर दिया। तब वह दैत्य भुजाओं से युद्ध करने के लिए दौड़ा, किन्तु देवी ने दैत्य की छाती के बीच में हाथ से प्रहार कर उसे नीचे पटक दिया और उसका सिर काट डाला। बचे हुए दैत्य पाताल में भाग गए। इतने में भगवान् विष्णु की निद्रा भङ्ग हुई तो देखते क्या हैं कि दैत्य मरा पड़ा है और एक कन्या हाथ

जोड़े खड़ी है। भगवान् विष्णु ने आश्चर्य में होकर उस कन्या से सब हाल पूछा। कन्या ने बताया कि मैं आपके शरीर से उत्पन्न हुई एक शक्ति हूँ। इस दैत्य के मन में आपके मारने के विचार को जान कर मैंने इसे मार डाला। भगवान् विष्णु इस बात से बहुत प्रसन्न हुए और कन्या से कहा कि कोई वर माँग। कन्या ने उत्तर में कहा कि यदि भगवन् मुझ पर वास्तव में प्रसन्न हैं, तो मुझे यह वरदान दीजिए कि जो मेरे निमित्त उपवास करे, उसे ब्रह्महत्यादि पापों से मैं तार दूँ। जो मेरे नाम पर जितेन्द्रिय होकर व्रत करे, वह करोड़ कल्प पर्यन्त वैष्णव-धाम में जाकर निवास करे और नाना प्रकार के भोग भोगे। एकादशी के दिन जो कोई भी मनुष्य उपवास, नक्त-व्रत तथा एक समय भोजन करे, उसे धर्म और मोक्ष प्राप्त हो। भगवान् ने एवमस्तु कहा और कहा कि तू मेरी परमोत्तम शक्ति है। एकादशी के दिन उत्पन्न हुई है, इसलिए तेरा नाम एकादशी होगा। जो तेरा व्रत करेगा, मैं उसके सब पाप भस्म करके उसे मोक्ष-पद दूँगा और कितना ही पापी आदमी क्यों न हो, उसके सब पाप दूर कर दूँगा।

अगहन महीने के कृष्ण-पक्ष की एकादशी मुर दानव के मारने के लिए पैदा हुई थी, इसका वृत्तान्त ऊपर दिया गया है। अब आगे प्रत्येक एकादशी का विवरण अलग-अलग दिया जाता है :—

मोक्षदा एकादशी

यह एकादशी अगहन मास के शुक्ल-पक्ष में पड़ती है। इसके बारे में यह कथा प्रसिद्ध है कि गोकुल में वैखानस नाम के एक राजा रहते थे। वह अपनी प्रजा को पुत्र के समान पालते थे। एक दिन राजा ने स्वप्न में देखा कि उनके पिता नरक में पड़े हैं और उनसे कह रहे हैं कि मेरा उद्धार करो। इसे देख, उन्हें बड़ा दुख हुआ, और उन्होंने प्रातःकाल उठ कर अपने दरबार के पण्डितों से अपना स्वप्न सुनाया। पण्डितों ने राय दी कि थोड़ी ही दूर पर पर्वत ऋषि का आश्रम है, वहाँ जाकर उनसे सब वृत्तान्त कहना चाहिए।

राजा पर्वत ऋषि के आश्रम को पधारे और ऋषि के समक्ष जाकर दण्डवत् किया। ऋषि ने राजा से उनके आने का कारण पूछा। राजा ने अपने स्वप्न की कथा सुनाई। इस पर थोड़ी देर तक ऋषि ने आँख बन्द करके ध्यान किया और राजा के पितरों की अधोगति के कारण को जान गए। आँखें खोल कर ऋषि ने कहा कि तुम्हारे पिता की अधोगति को प्राप्त होने का कारण मैं जान गया। वह यह है कि तुम्हारे पिता के पूर्वजन्म में दो स्त्रियाँ थीं। वह उनमें से एक का मान तो बहुत रखता था, किन्तु दूसरी का ज़रा भी नहीं। उससे केवल विवाह कर लिया था, किन्तु उसके साथ स्त्री का व्यवहार नहीं करता था।

उस काम-पीड़िता स्त्री के शाप से तुम्हारा पिता नरक-गामी हो गया है। राजा ने इस पर ऋषि से इस पाप के निवारण का उपाय पूछा। उन्होंने कहा कि अगहन महीने के शुक्ल-पक्ष में मोक्षदा नाम की एकादशी होती है। उस एकादशी में विधिपूर्वक व्रत करो, तब तुम्हारे पिता का पाप नष्ट हो सकता है। राजा ने अपने नगर में आकर इस एकादशी का व्रत किया, जिसके प्रभाव से उसके पिता नरक से स्वर्ग चले गए।



सफला एकादशी

इस एकादशी का नाम सफला है। यह पौष महीने के कृष्ण-पक्ष में पड़ती है। नारायण इसके देव हैं। नागों में शेष जी, पक्षियों में गरुड़, यज्ञों में अश्वमेध, नदियों में जैसे गङ्गा और मनुष्यों में ब्राह्मण हैं, वैसे ही एकादशियों में पौष मास के कृष्ण-पक्ष की एकादशी है। नारियल, आँवला, दाड़िम, सुपारी, लौंग, अगर आदि से इस दिन देव की पूजा की जाती है। इस एकादशी को दीप-दान किया जाता है और रात को जागरण भी होता है।

महिष्मत नामक राजा की चम्पावती नाम की पुरी थी। इस राजा के चार पुत्र थे। उनमें लुयङ्क नामक ज्येष्ठ पुत्र बड़ा पापी था। वह पर-स्त्रियों से कुकर्म करता, जुआ खेलता, वेश्याओं के घर जाता और इस तरह अपने पिता

का द्रव्य उड़ाता था। महिष्मत राजा ने इसी लिए इस पुत्र को अपने राज्य से निकाल दिया। यह लड़का वन में चला गया और सोचा कि दिन भर जङ्गल में रहूँगा और रात में पिता के यहाँ चोरी करूँगा। यह सोच कर वह वन को चला गया और बरसों चोरी करके अपना जीवन व्यतीत करता रहा। लुयङ्क जहाँ रहता था वहाँ एक पीपल का वृक्ष था। एक दिन का हाल है कि सफला एकादशी के दिन इसे कुछ खाने को नहीं मिला और न इसके पास कोई वस्त्र ही शरीर ढँकने को मौजूद था। रात को बहुत ज़ोर से जाड़ा पड़ा, जिसके कारण वह चेष्टा-रहित हो गया। शीत के मारे उसे रात भर नींद न आई। रात भर दाँत कटकटाते ही बीता। सूर्योदय होने पर भी लुयङ्क को होश नहीं आया। इस तरह चेष्टा-रहित पड़े-पड़े सफला के दिन दोपहर को धूप के लगने से लुयङ्क को होश आया और भोजन की तलाश में निकला। शक्ति न होने के कारण उसे न तो कोई शिकार मिला, न अन्य वस्तु। मजबूर होकर फल बीन लाया और पीपल के वृक्ष के नीचे डाल कर कमज़ोरी के मारे गिर पड़ा। इतने में शाम हो गई और जाड़ा पड़ने लगा। इस पर दुखित हो, पीपल की जड़ पकड़ कर वह रोने लगा कि हे पिता! मेरा क्या होगा? इसी अवस्था में वह सारी रात जागता ही रहा। भगवान् बड़े दयालु हैं, उन्होंने देखा कि लुयङ्क ने तो एक प्रकार

सफला एकादशी का व्रत, जागरण, पूजा इत्यादि सभी कर लिया है, अतः प्रसन्न होकर उन्होंने इसे निष्कण्टक राज्य दिया। सुबह होते ही उसके पास एक घोड़ा आया और वह लुपङ्क के सामने खड़ा होगया। उसी समय आकाशवाणी भी हुई—"हे राजपुत्र! वासुदेव भगवान् की कृपा से और सफला एकादशी के प्रताप से तुझे निष्कण्टक राज्य प्राप्त हो।" उसकी बुद्धि सुधर गई, और वह अपने पिता के पास आया। पिता ने उसकी भक्तियुक्त बुद्धि देख कर उसे राज्य दे दिया। यह सब एकादशी के प्रताप से ही हुआ।



पुत्रदा एकादशी

इस एकादशी का नाम पुत्रदा एकादशी है। यह पौष महीने के शुक्ल-पक्ष में पड़ती है। इसके विषय में यह कथा है कि भद्रावती नगरी में सुकेतु नामक राजा था। शैव्या उसकी रानी थी। परन्तु उसके कोई पुत्र नहीं था, जिसके कारण राजा और रानी दोनों दुखी रहते थे। एक दिन इसी कारण से व्यथित हो, राजा ने आत्मघात करने का विचार किया। किन्तु आत्मघात की दुर्गति सोच कर इस कार्य से दूर रहा। एक दिन सुकेतु राजा घोड़े पर सवार होकर एक गहन-वन में चला गया, पुरोहित आदि किसी को ख़बर न की। इस जङ्गल में घूमते-घूमते दोपहर का

समय होगया। भूख और प्यास से राजा का गला सूखने लगा, तब इधर-उधर डोलता-फिरता मन में विचार करने लगा कि मैंने क्या दुष्कर्म किया कि मुझे इतना कष्ट मिला। राजा सोचता हुआ जाता ही था कि उसे एक सुन्दर तालाब दिखाई पड़ा, जो मानसरोवर के समान चारों तरफ़ कमलों से भरा हुआ था। मुनि लोग किनारे बैठे वेद-पाठ कर रहे थे। राजा ने मुनियों से पूछा कि आप लोग यहाँ क्या कर रहे हैं? मुनियों ने कहा कि माघ मास आज से पाँचवें दिन आने वाला है और आज पुत्रदा नामक एकादशी है। यह शुक्ला एकादशी पुत्र की इच्छा करने वालों को पुत्र देती है। राजा ने इस पर अपना हाल कह सुनाया। मुनियों ने राजा को इस व्रत के करने की सलाह दी। तब राजा ने यह व्रत किया, जिसके प्रभाव से उसके एक पुण्यवान् पुत्र पैदा हुआ।

*

षट्तिला एकादशी

माघ मास के कृष्ण-पक्ष में यह एकादशी पड़ती है। पौष के महीने में पुष्य नक्षत्र में गोबर लेकर उसमें तिल और कपास मिला कर गोले बना लेते हैं और होम करने के लिए सुखा लेते हैं। माघ के कृष्ण-पक्ष की एकादशी को इन गोलों का हवन करते हैं और दिन भर उपवास और रात को जागरण करते हैं। काली गाय या काले तिल का

दान इस तिथि पर बहुत शुभ माना गया है। इस एकादशी का नाम षट्तिला एकादशी है। इस एकादशी को तिल का तेल मल कर स्नान करते हैं, तिल ही से होम करते हैं, तिल ही पीने के पानी में डालते हैं, तिल ही का भोजन करते हैं और तिल ही दान देते हैं।

भविष्यपुराण में इसकी एक कथा है। उसमें लिखा है, एक दिन नारद जी बैकुण्ठ में श्रीकृष्ण के पास गए और उनसे जाकर यह पूछा कि षट्तिला एकादशी का माहात्म्य बताइए। श्रीकृष्ण ने कहा कि पहले मृत्युलोक में एक बहुत व्रत करने वाली ब्राह्मणी थी। उसने उपवास और विष्णु-भक्ति में अपना शरीर दुर्बल कर लिया था। एक दिन विष्णु स्वयं भिखारी बन कर उसके दरवाज़े पर गए और भिक्षा माँगी। ब्राह्मणी ने क्रोध करके एक मिट्टी का ढेला उनके खप्पर में डाल दिया। इस मिट्टी के ढेले को लेकर वे बैकुण्ठ चले आए। कुछ दिनों के बाद जब ब्राह्मणी स्वर्ग में आई तो, मिट्टी के दान के कारण स्वर्ग में उसे बहुत अच्छा घर रहने को मिला, किन्तु उसके अन्दर खाने-पीने को कुछ भी न था। इस पर वह विष्णु जी के पास आकर शिकायत करने लगी और पूछने लगी कि जब मैंने मृत्यु-लोक में इतनी भक्ति की, तो फिर क्यों मुझको बैकुण्ठ में सुख नहीं है? विष्णु जी ने कहा कि इसका कारण तुम्हें देव-स्त्रियाँ बताएँगी। देव-स्त्रियों से जब उस ब्राह्मणी ने

पूछा तो उन्होंने कहा कि तुमने षट्तिला एकादशी का व्रत नहीं किया था। इस पर उस ब्राह्मणी ने षट्तिला का व्रत किया और उसके प्रभाव से तुरन्त ही धन-धान्य, वस्त्र आदि सम्पदाओं से युक्त हो गई।

जया एकादशी

यह एकादशी माघ मास के शुक्ल-पक्ष में पड़ती है। पद्मपुराण में लिखा है कि एक समय इन्द्र वृन्दावन में बहुत आनन्दपूर्वक क्रीड़ा कर रहे थे। हज़ारों अप्सराएँ और गन्धर्व लोग इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए वहाँ नाचते-गाते थे। माल्यवान नाम का एक गन्धर्व भी वहाँ गान कर रहा था और वहीं पुष्पवती नाम की एक अप्सरा भी गान कर रही थी। माल्यवान और पुष्पवती दोनों ही एक दूसरे को देख कर मोहित हो गए और एक दूसरे को इशारा करने लगे। दोनों गा तो रहे थे इन्द्र के समक्ष, किन्तु दृष्टि एक दूसरे पर रहती थी। थोड़ी देर के अन्दर ही इन लोगों का नाचना-गाना अप्सराओं और गन्धर्वों के सुर-ताल से अलग हो गया, और इन्द्र की सभा में विघ्न होने लगा। इन्द्र ने इन दोनों को इस प्रकार परवश देख कर और अपना अपमान समझ कर इन लोगों को शाप दे दिया—जाओ, तुम पिशाच हो। तब ये दोनों हिमालय पर जा पड़े और पिशाच बन कर भयङ्कर दुख पाने लगे। पिशाचपने के दुख

के मारे गन्ध, रस, स्पर्श सबका ज्ञान जाता रहा। न दिन को आराम मिलता था और न रात को नींद आती थी। जाड़ों के मारे दाँत कटकटाते थे। वे पहाड़ की गुफाओं में भ्रमण करते फिरते थे। इसी अवस्था में थे कि "जया" नाम की माघ मास के शुक्लपक्ष की एकादशी आई। इस दिन न इन्हें कुछ खाने मिला को और न पीने को। इसलिए ये दोनों ही दुखित हो शाम को एक पीपल के वृक्ष के नीचे जा पड़े। रात्रि को जाड़ा अधिक पड़ रहा था, इसलिए रात्रि में जाड़े के कारण दोनों में से किसी को भी नींद न आई और दोनों को जागरण करना पड़ा। इस तरह इनके अनजाने ही इन दोनों का एकादशी-व्रत पूर्ण हो गया। प्रातःकाल उठते ही व्रत के प्रभाव से इन दोनों का पिशाचत्व नष्ट हो गया। जैसे पहले थे वैसे ही हो गए और फ़ौरन ही इन्द्रलोक को प्राप्त हो गए। इन्द्र को इन्हें आते हुए देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा कि आख़िर किस देवता के प्रताप से तुमने मेरे शाप को भङ्ग करा लिया? माल्यवान ने पूरी कथा कह सुनाई और कहा यह "जया" एकादशी का प्रताप है कि मैं आज शाप से मुक्त हो, अपने पुराने रूप को धारण कर सका हूँ। जो मनुष्य इस व्रत को श्रद्धायुक्त होकर करता है, वह पुराणों के कथनानुसार करोड़ कल्प-पर्यन्त बैकुण्ठ में रहता है।

✽

विजया एकादशी

इस एकादशी का भी बड़ा महत्व माना जाता है। यह फाल्गुन मास के कृष्णपक्ष में पड़ती है। स्कन्धपुराण में कथा है कि जिस समय श्री रामचन्द्र जी लङ्का पर आक्रमण करने के लिए वानरों और रीछों की सेना लेकर समुद्र-तट पर पहुँचे, तो अगाध समुद्र को देख कर उन्हें बड़ी शङ्का पैदा हो गई कि इस ग्रहयुक्त समुद्र को कैसे पार किया जायगा। लक्ष्मण ने इस पर रामचन्द्र जी को सलाह दी कि आप यहाँ से थोड़ी ही दूर पर बसने वाले मुनि से इस बारे में सलाह कीजिए। रामचन्द्र उस आश्रम-वासी मुनि के पास गए और उनसे अपना वृत्तान्त कह कर पूछने लगे—महाराज, इस गम्भीर समुद्र को पार करने का कोई सरल उपाय बताइए। तब मुनि ने कहा कि मैं व्रतों में उत्तम व्रत तुम्हें बतलाता हूँ, जिसके करने से तत्काल तुम्हारी विजय होगी। इसके करने से केवल समुद्र ही पार न होगे, बल्कि लङ्का पर भी विजय पाओगे। वह व्रत यह है कि फाल्गुन मास के कृष्ण-पक्ष की दशमी को सोने, चाँदी, ताँबे या मिट्टी का एक घड़ा बनवाना चाहिए, उस घड़े को भर कर उसके ऊपर पीपल, वट गूलर, आम और पाकर के पल्लव रख देने चाहिए। इस कुम्भ के नीचे सात धान्य और ऊपर जौ रख कर उसके ऊपर सोने की लक्ष्मीनारायण की मूर्त्ति रखनी चाहिए। एकादशी के

दिन प्रातःकाल स्नान करके उसकी पूजा करो, रात भर कुम्भ के सामने बैठ कर जागरण करो और द्वादशी के दिन उस कुम्भ को जल-स्थल में पहुँचा कर मूर्त्ति को वेद-पाठी ब्राह्मण को दे दो। इस विधि से अगर सेना-सहित तुम व्रत करोगे तो तुम्हारी सब कठिनाई जाती रहेगी। राम ने ऐसा ही किया और विजयी हुए।

आमलकी एकादशी

इस एकादशी का नाम आमलकी एकादशी है। यह फाल्गुन मास के शुक्ल-पक्ष में पड़ती है। इसके माहात्म्य में यह कहा जाता है कि वैदिश नाम के नगर में चैत्ररथ राजा रहता था। वह एकादशी का बड़ा भक्त था। फाल्गुन शुक्ल एकादशी आने पर उसने आँवले के नीचे बैठ कर जलपूर्ण कुम्भ स्थापन कर उसके पास छत्र और जूते रक्खे, पास ही परशुराम की मूर्त्ति स्थापित की और उसकी पूजा की। इतने में वहीं एक व्याध आया जो मांस का एक लोथड़ा अपने साथ लिए हुए था। वह बड़ा पापी था, किन्तु श्रम की वजह से थक कर आँवले के वृक्ष के नीचे बैठ गया और रात भर कथा सुनता रहा, जिसके प्रभाव से मरने के बाद उसने बड़े प्रतापी राजा का शरीर पाया और धर्मपूर्वक राज्य करने लगा। एक दिन वह शिकार खेलने गया, जङ्गल में रास्ता भूल गया और पहाड़

की एक शिला पर जाकर सो रहा। इतने में कुछ म्लेच्छों का झुण्ड आया और उसे सोता हुआ देख कर उसको मारने के लिए तीर भाले आदि फेंकने लगा, किन्तु तीर आदि उसके शरीर पर पहुँच कर बिलकुल बेकार हो जाते थे। जब म्लेच्छों ने यह देखा तो ज़ोरों के साथ आक्रमण करने का विचार किया। इतने में उस राजा के शरीर से एक सुन्दरी पैदा हुई। वह बड़ी भयङ्कर थी और उसने उन म्लेच्छों को मार डाला। जब राजा जागा तो उसने शत्रुओं को इस तरह मरा हुआ देख कर बड़ा आश्चर्य किया। इतने में आकाशवाणी हुई कि हे राजन्! तुम उस जन्म में व्याध थे, किन्तु तुमने शुक्ल-पक्ष की एकादशी को जागरण किया था, उसी का प्रभाव है कि आज तुम इस प्रकार से अपने शत्रुओं पर विजयी हुए हो।



पाप-मोचनी एकादशी

इसका नाम पाप-मोचनी एकादशी है। चैत्र मास के कृष्ण-पक्ष में यह पड़ती है। इसके बारे में भविष्योत्तर पुराण में यह कथा है कि एक समय वसन्त-ऋतु में चैत्ररथ नामक वन में इन्द्र अप्सराओं और गन्धर्वों के साथ आनन्द करते थे। उसी समय वन में ऋषि-मुनि अपनी-अपनी तपस्या में रत थे। मुजघोषा नाम की अप्सरा ने वहाँ पर तप करने वाले मेधावी नामक मुनि को अपने वश में करने का

विचार किया और मुनि के समीप जाकर अच्छे-अच्छे वस्त्र और आभूषणों को पहन, मधुर स्वर से वीणा पर गाने लगी। मेधावी का चित्त विचलित हो गया और दोनों कामासक्त हो, एक दूसरे के साथ रहने लगे। मुनि ने अपनी तपस्या को तिलाञ्जलि दे दी और अप्सरा इन्द्रलोक को नहीं गई। दोनों इसी तरह बहुत काल तक रहते रहे। जब-जब अप्सरा देवलोक में जाने की इच्छा प्रकट करती, तब-तब मुनि उसे यह कह कर रोक लेते कि कल जाना। एक दिन अप्सरा ने कहा—महाराज, आपका कल कितना बड़ा है? इस पर मुनि को कुछ विचार पैदा हुआ। उन्होंने ध्यान करके देखा तो मालूम हुआ कि इस अप्सरा के साथ रहते उन्हें ७५ वर्ष व्यतीत हो गए। मुनि को इस बात पर बड़ा क्रोध आया और उन्होंने उसे यह शाप दिया कि तू पिशाचिनी हो। अप्सरा ने दुखित होकर पूछा कि आपने शाप तो दे दिया, यह तो आपके साथ रहने का मुझे फल मिला, किन्तु अब यह बताइए कि इस शाप का प्रतीकार क्या है? इस पर मुनि ने कहा कि चैत के महीने की एकादशी तुम्हारा शाप नाश करेगी। इसके बाद मेधावी अपने पिता के आश्रम में आए और उन्होंने अपने पतन होने का पूरा वृत्तान्त कह सुनाया।

पिता ने कहा—बेटा, तुमने बहुत बुरा किया, ऐसा तुम्हें नहीं करना चाहिए था, किन्तु जाओ चैत की 'पाप-

मोचनी एकादशी का व्रत करो, इससे तुम्हारे सब पाप नाश हो जायँगे। इस एकादशी का यही महत्व है।



कामदा एकादशी

इसका नाम कामदा एकादशी है। चैत्र मास के शुक्ल-पक्ष में यह होती है। इसका माहात्म्य वाराह-पुराण में यह बताया गया है कि एक बार नागलोक में पुण्डरीक राजा रहता था। उसके यहाँ गन्धर्व और किन्नर सभी मौजूद थे। एक दिन उसके सामने ललित नाम का गन्धर्व गान कर रहा था। उसे अपनी स्त्री ललिता का गाते-गाते ही ख़्याल आ गया, जिससे उसके ताल और स्वर में विघ्न पड़ने लगा। कर्कर नाम के नाग ने यह बात पुण्डरीक राजा से कह दी। इस पर पुण्डरीक राजा ने अप्रसन्न होकर ललित को राक्षस हो जाने का शाप दिया। राजा के शाप से ललित राक्षस होकर फिरने लगा। ललिता भी उसके साथ फिरने लगी। ललित की दुर्दशा देखकर उसकी बुरी हालत होती जाती थी। अन्त में ललिता विचरते-विचरते विन्ध्याचल के शिखर पर ऋष्यमूक ऋषि के पास पहुँची। उन्होंने इसे चैत्र शुक्ल-पक्ष की एकादशी का व्रत करने की सलाह दी और इसी व्रत के प्रताप से ललित फिर गन्धर्व-रूप को प्राप्त हुआ।

❦

वरूथिनी एकादशी

इसका नाम वरूथिनी एकादशी है। यह वैशाख मास के कृष्ण-पक्ष में पड़ती है। इस एकादशी-व्रत के रखने से बड़े-बड़े फल बताए गए हैं।

मोहनी एकादशी

इसका नाम मोहनी एकादशी है। वैशाख मास के शुक्ल-पक्ष में यह पड़ती है। इसके सम्बन्ध में कूर्मपुराण में यह कथा कही गई है कि सरस्वती के तट पर भद्रावती नाम की नगरी में द्युतिमान नामक राजा राज्य करता था। इसके कई पुत्र थे। एक पुत्र का नाम धृष्टबुद्धि था, जो बहुत पापाचारी था। जुआ खेलना, व्यभिचार करना, दुर्जनों का सङ्ग, वृद्धों का अपमान करना इत्यादि दुर्गुण उसमें पाए जाते थे। उसकी बुराइयों को देख कर उसके पिता ने उसे निकाल दिया और वह वन में रहने लगा। वहाँ पर कभी चोरी करता और कभी जानवरों को मार कर खाता था। एक दिन वह अपने पूर्वजन्म के पुण्य-प्रताप से कौण्डिन्य मुनि के आश्रम में जा पहुँचा। उस महामुनि के कपड़े के स्पर्श से उसका पाप जाता रहा। ऋषि ने कहा कि वैशाख शुक्ल एकादशी का व्रत करो, इसके प्रभाव से बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं। अनेक पापी

इसका व्रत करने से पाप-रहित हो गए हैं। उसने उस एकादशी का व्रत किया और उसके प्रभाव से पाप-निर्मुक्त हुआ।



अपरा एकादशी

इसका नाम अपरा एकादशी है। ज्येष्ठ मास के कृष्ण-पक्ष में यह पड़ती है। इसके प्रभाव से ब्रह्महत्या-जैसे बड़े-बड़े पाप भी दूर हो जाते हैं।



निर्जला एकादशी

इसका नाम निर्जला एकादशी है। ज्येष्ठ मास के शुक्ल-पक्ष में यह पड़ती है। इस एकादशी के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि भीमसेन ने व्यास जी से कहा कि प्रत्येक एकादशी के दिन अर्जुन, नकुल आदि भाई मुझसे कहते हैं कि आप आज उपवास करें, किन्तु मुझसे भूखा नहीं रहा जाता। इसलिए कोई ऐसा उपाय बताइए कि उपवास न करते हुए मैं पाप का भागी न बनूँ। इस पर व्यास जी ने कहा कि जो लोग एकादशी को अन्न खाते हैं, वे अवश्य नरक जाते हैं। यह सुन कर भीमसेन काँपने लगा और कहने लगा कि हे पितामह, मुझसे तो भूखा नहीं रहा जायगा। तब व्यास जी ने बताया कि अगर

ज्येष्ठ मास के शुक्ल-पक्ष की एकादशी को व्रत रक्खो, तो तुम्हारा सात एकादशी-व्रत न करने का जो पाप है, वह अवश्यमेव मिट सकता है। इसमें एकादशी के सूर्योदय से द्वादशी के सूर्योदय तक जल की मनाही रहती है। इस एकादशी के दिन एक घड़ा भर के जल-दान करने से सब पाप छूट जाता है। इसको पाण्डव-एकादशी भी कहते हैं।

५

योगिनी एकादशी

इसका नाम योगिनी एकादशी है। आषाढ़ मास के कृष्ण-पक्ष में यह होती है। इसके बारे में यह कथा कही जाती है कि कुबेर के यहाँ हेममाली नाम का फूल लाने वाला माली था। उसकी स्त्री का नाम विशालाक्षी था। प्रतिदिन वह समय पर कुबेर के यहाँ शिव-पूजन के लिए पुष्प दे आया करता था, किन्तु एक दिन अपनी स्त्री के वश हो, घर पर ही रह गया और कुबेर के यहाँ फूल न पहुँचा सका। कुबेर को शिव-पूजा करते-करते दोपहर हो गया, किन्तु फूल लेकर वह न गया। कुबेर को बड़ा क्रोध आया और उसको बुला कर पूरा हाल जान, उन्होंने शाप दे दिया कि तूने देव की अवहेलना की है, इसलिए कोढ़ी होकर पतित हो जा और सदा के लिए अपनी स्त्री से जुदा हो। यह वचन सुनते ही हेममाली वहाँ से

नीचे गिर गया और उसका शरीर कुष्ट से भर गया। वह असह्य दुखों को सहता हुआ इधर-उधर फिरने लगा। अन्त में मार्कण्डेय मुनि के आश्रम में गया और वहाँ मार्कण्डेय से उसने अपना पूरा हाल सच-सच कह दिया। इससे प्रसन्न होकर मार्कण्डेय ने उसे बताया कि आषाढ़ मास के कृष्ण-पक्ष की एकादशी के व्रत करने से कुष्ठ-रोग नष्ट हो जाता है।

हेममाली ने मुनि के आज्ञानुसार इस व्रत को किया और कुष्ठ से छुटकारा पाकर फिर अपने पूर्व-जैसा ही होगया।

पद्मनाभा एकादशी

इसका नाम पद्मनाभा एकादशी है। आषाढ़ मास के शुक्ल-पक्ष में यह पड़ती है। इस दिन व्रत करने से यदि वर्षा न होती हो, तो हो सकती है।

इसके विषय में ब्रह्माण्डपुराण में कथा है कि एक राजा के यहाँ एक बार तीन वर्ष तक पानी नहीं बरसा, जिससे उसकी प्रजा मरने लगी। राजा को प्रजा की दशा देख, बड़ा दुख हुआ और वह गहन-वन में प्रवेश कर मुनियों से इसके उपाय पूछने का प्रयत्न करने लगा। वन में घूमते-घूमते वह अङ्गिरस ऋषि के पास आया। उन्होंने राजा को पद्मनाभा एकादशी के दिन उपवास करने की सलाह दी,

जिसके प्रभाव से राजा के राज्य में बहुत काफ़ी वर्षा हुई और प्रजा का दुख जाता रहा।



कामदा और पुत्रदा एकादशी

श्रावण मास के कृष्ण-पक्ष की एकादशी का नाम कामदा एकादशी है, और शुक्ल-पक्ष की एकादशी का नाम पुत्रदा है। इसके सम्बन्ध में भविष्यपुराण में यह कथा लिखी है कि द्वापर-युग के आदि में महिष्मती नगरी में महीजित नाम का राजा था। वह अपनी प्रजा को पुत्र के समान पालता था और देश पर न्याय और धर्म के अनुसार राज करता था। किन्तु उसके कोई पुत्र न था। कुछ दिन तक चुपचाप बैठे रहने के बाद पुत्र-प्राप्ति से निराश होकर वह अपने राज्य के पण्डितों के पास गया और उनसे कहने लगा कि मैंने कभी प्रजा पर कोई अत्याचार नहीं किया, अपने भाई-बन्धुओं को भी अन्याय करने पर दण्ड दिया, प्रजा को अपनी सन्तान के समान पाला, फिर क्या कारण है कि मैं इस समय तक पुत्र-हीन हूँ? ब्राह्मण-गण राजा की इस बात को सुन, दुखित हो, उसके इस दुख के दूर करने का उपाय मालूम करने के लिए वन में लोमश मुनि की कुटी पर पहुँचे और मुनि से अपने आने का कारण बताया। मुनि थोड़ी देर तक ध्यानावस्थित हुए और उस राजा का सब हाल जानकर

कहने लगे कि पूर्व-जन्म में यह राजा बड़ा धन-हीन वैश्य था। गाँव-गाँव घूम कर वाणिज्य करता था। एक दफ़ा ज्येष्ठ मास के शुक्ल-पक्ष की द्वादशी को दिन-दोपहर के समय गाँव की सीमा पर इसे प्यास लगी। पास ही एक निर्मल सरोवर देखकर वहाँ पानी पीने गया। वहाँ तुरन्त ही प्रसूता गाय भी प्यास से व्याकुल होकर आई। इसने उस गाय को हाँक कर स्वयं पानी पहले पी लिया। उसी पाप के कारण वह इस समय पुत्रहीन है। इसलिए अगर वह पुत्रदा नाम की एकादशी का व्रत करे तो उसे पुत्र प्राप्त हो। ब्राह्मण लोमश ऋषि के वचन सुनकर अपने घर वापस आए और राजा से सब हाल कहा। राजा ने यथायोग्य व्रत का पालन किया, और उसके प्रभाव से पुत्र प्राप्त हुआ।

अजा एकादशी

इसका नाम अजा एकादशी है। भाद्रपद के कृष्ण-पक्ष में यह पड़ती है। ब्रह्माण्डपुराण में लिखा है कि राजा हरिश्चन्द्र बड़ा सत्यसन्ध और दृढ़व्रत था। अपनी सच्चाई के कारण उसे अनेक कष्ट उठाने पड़े। उसे अपनी स्त्री, बालक और स्वयं अपने को भी अपने ही प्रण के कारण बेचना पड़ा। वह एक श्वपच के घर में बिका और वहीं रहने लगा। किन्तु हमेशा चिन्ता में निमग्न रहता था कि

क्या कारण है, जो मैं ऐसे दुख में पड़ा। एक दिन एक मुनि से भेंट हो गई। मुनि से हरिश्चन्द्र राजा ने अपना वृत्तान्त सुनाया। इस पर मुनि ने भाद्रपद के कृष्ण-पक्ष की एकादशी का व्रत करने को कहा, जिससे राजा के सब दुख कट गए। वह अपनी स्त्री और पुत्र से फिर मिला और राज्य भी उसे फिर प्राप्त हो गया, और अन्त समय में स्वर्ग-लोक को प्राप्त हुआ।

वामन एकादशी

इसका नाम वामन एकादशी है, और किसी-किसी ने जयन्ती भी कहा है। भाद्रपद के शुक्ल-पक्ष में यह पड़ती है। कहते हैं कि इस दिन क्षीरसागर में शय्या पर सोए हुए भगवान् करवट लेते हैं। इस दिन वामन भगवान् की पूजा की जाती है। दही, चावल और रुपयों का दान किया जाता है।

इन्दिरा एकादशी

इसका नाम इन्दिरा एकादशी है। आश्विन मास के कृष्ण-पक्ष में यह पड़ती है। अधोगति को प्राप्त हुए पितरों को गति देने वाली है। इसके सम्बन्ध में ब्रह्मवैवर्त-पुराण में यह कथा लिखी है कि माहिष्मती पुरी में सतयुग में

इन्द्रसेन नाम का एक राजा था। उसके सामने नारद ने एक दिन आकर कहा कि मैं स्वर्ग-लोक से अभी यम-लोक गया हुआ था, वहाँ तुम्हारे पिता को दुखी पाया। उन्होंने मेरे द्वारा तुम्हारे पास यह सन्देशा भिजवाया है कि इन्दिरा व्रत करके मुझे स्वर्ग-लोक पहुँचाओ। नारद ने इन्दिरा-व्रत की रीति इत्यादि भी इन्द्रसेन से कही। तब पितृ-भक्त इन्द्रसेन ने उस व्रत को किया और उसका पिता गरुड़ पर बैठ कर उसी समय स्वर्ग को चला गया।

पापाङ्कुशा एकादशी

इसका नाम पापाङ्कुशा एकादशी है। आश्विन मास के शुक्ल-पक्ष में यह होती है। पद्मनाभ भगवान् की इस दिन पूजा की जाती है। इसका भी ब्रह्माण्ड पुराण में बड़ा माहात्म्य बताया गया है।

रमा एकादशी

इसका नाम रमा एकादशी है। कार्त्तिक मास के कृष्ण-पक्ष में यह होती है। इसके सम्बन्ध में यह कथा कही जाती है कि मुचकुन्द राजा की कन्या चन्द्रभागा का विवाह शोभन नामक एक राजकुमार से हुआ था। एक दिन शोभन अपने श्वसुर के घर गया। उस दिन एकादशी

थी। शोभन बहुत ही दुर्बल था, किन्तु मुचकुन्द राजा इतने दृढ़-भक्त थे कि दुर्बलता का कुछ ख़्याल न करके शोभन को एकादशी-व्रत करने पर मजबूर किया। परिणाम यह हुआ कि द्वादशी के प्रातःकाल राजकुमार शोभन मर गया। राजा मुचकुन्द ने उसकी यथाविधि दाह-क्रिया कर दी और चन्द्रभागा को आज्ञा दी कि वह अपने पति के साथ सती न हो। चन्द्रभागा उस दिन से विधवा होकर, किन्तु एकादशी को मानती हुई, रहने लगी। शोभन ने मरने के बाद एकादशी के प्रभाव से मन्दराचल पर एक सुन्दर देवपुर पाया, जहाँ उसको हर-एक प्रकार का आनन्द प्राप्त था। मुचकुन्दपुर का रहने वाला सोमशर्मा नामक एक ब्राह्मण तीर्थ-यात्रा करता-करता एक दफ़ा मन्दराचल पर गया, तो शोभन को देखकर पहचान गया कि ये तो हमारे राजा के दामाद हैं। वह उनसे मिलने गया। शोभन ने अपने पिता, ससुर और स्त्री का हाल पूछा। सोमशर्मा ने सबका कुशल-सम्वाद सुनाया। फिर सोमशर्मा ने शोभन से पूछा कि यहाँ कैसे पहुँचे? शोभन ने सब हाल कह सुनाया और बताया कि रमा नाम की एकादशी के प्रभाव से मैं मरते ही मन्दराचल में देवपुर का स्वामी हो गया था। सोमशर्मा इसके बाद मुचकुन्द-पुर वापस आया और राजकुमारी चन्द्रभागा से सब हाल कह सुनाया। चन्द्रभागा ने जब यह वृत्तान्त सुना, तो

उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और अन्त में सोमशर्मा से कहा कि मुझे मन्दराचल ले चलो। सोमशर्मा उसे लेकर चला और ऋषि के मन्त्र के प्रभाव से चन्द्रभागा को दिव्य-रूप धारण कराके उसे मन्दराचल में शोभन के पास पहुँचा दिया। वहाँ शोभन और चन्द्रभागा आनन्दपूर्वक रहने लगे। चन्द्रभागा ने अपने पति के मरने के बाद बराबर एकादशी का व्रत किया था और इसका प्रभाव यह हुआ कि अन्त में उसकी अपने पति से भेंट हो गई।



तुलसी-विवाह एकादशी

कार्तिक कृष्ण-एकादशी और अमावस्या के शुभ दिन, तुलसी और कृष्ण का, प्रति वर्ष विवाह मनाया जाता है। इस त्योहार के सम्बन्ध में पद्मपुराण में दो मुख्य कथाएँ लिखी हैं:—

कालनेमि नामक दैत्य की कन्या वृन्दा का विवाह जलन्धर नामक दैत्य के साथ हुआ था। जलन्धर की उत्पत्ति महादेव जी के पसीने से हुई थी। जिस समय देव और दैत्य दोनों मिलकर सागर का मथन कर रहे थे, उस समय इन्द्र ने महादेव जी का, किसी बात पर, अपमान कर दिया था। इस अपमान से महादेव जी के शरीर से जो पसीना निकला और समुद्र में गिरा, उससे जलन्धर नाम का दैत्य पैदा हुआ था। इसी दैत्य का विवाह

कालनेमि की कन्या वृन्दा के साथ हुआ। जब जलन्धर बड़ा हुआ, तो उसने सागर से पैदा होने के कारण जलाशयों का अधिपति होना घोषित किया और महासागर से उत्पन्न १४ रत्नों* को इन्द्र से माँगा। इन्द्र ने इन रत्नों को देने से इन्कार किया। इस पर जलन्धर ने इन्द्रलोक पर आक्रमण करने का विचार किया और इसके निमित्त एक कठिन तप करना शुरू कर दिया। ब्रह्मा ने उस पर प्रसन्न होकर उसे यह वर दिया कि जब तक तुम्हारी स्त्री तुमको छोड़कर किसी अन्य पुरुष से सम्बन्ध न करेगी, तब तक तुम्हारी मृत्यु असम्भव है। अब जलन्धर को अपनी सफलता का पूरा विश्वास हो गया और उसने इन्द्र के ऊपर चढ़ाई कर दी। अमरावती को लूट लिया और देवताओं को हरा दिया। विष्णु भगवान् लड़ाई से भाग निकले और देवताओं में आपत्ति फैल गई। विष्णु भगवान् भागकर वैकुण्ठ में छिप गए और वहाँ लक्ष्मी से सब हाल कह सुनाया। उनसे पूछा कि इस दैत्य के मारने का क्या उपाय है? लक्ष्मी ने ब्रह्मा के वरदान का पूरा क़िस्सा कह सुनाया और कहा कि जब तक वृन्दा पवित्र सती है,

---

*महासागर से उत्पन्न चौदह रत्न ये हैं:—(१) लक्ष्मी (२) कौस्तुभ (३) पारिजात (४) सुरा (५) धन्वन्तरि (६) चन्द्रमा (७) अमृत (८) कामधेनु (९) ऐरावत (१०) रम्भा (११) कालकूट (१२) उच्चैःश्रवा (१३) सुदर्शन चक्र (१४) शङ्ख

तब तक दैत्य जलन्धर की मृत्यु असम्भव है। तब देवता लोग वृन्दा के सतीत्व को भ्रष्ट करने का उपाय सोचने लगे। विष्णु ने शिव को भेजा कि जाओ, वृन्दा का सतीत्व किसी प्रकार से भ्रष्ट कर आओ; किन्तु महादेव जी सफल न हुए। तब विष्णु स्वयं वृन्दा के पास जलन्धर का रूप धारण करके गए। वृन्दा ने इस भेद को ज़रा भी नहीं समझ पाया। वह उनको अपना पति समझने लगी। ज्योंही विष्णु वृन्दा का सतीत्व नष्ट करने में सफल हुए कि जलन्धर का सिर इन्द्र ने काट दिया और वह वृन्दा के आँगन में आ गिरा। वृन्दा को जब सब हाल मालूम हुआ, तो उसे बड़ा क्रोध आया, और उसने विष्णु को शाप दिया कि "जाओ, तुम काले पत्थर की बटिया शालिग्राम हो जाओ।" विष्णु ने इसके उत्तर में उसे यह शाप दिया कि "तुम तुलसी-वृक्ष होओ।" उसी समय से विष्णु शालिग्राम हुए और वृन्दा तुलसी-वृक्ष हो गई। विष्णु भगवान् के मानने वाले प्रति वर्ष तुलसी-रूपी वृन्दा का विवाह शालिग्राम से करते हैं।

दूसरी कथा इस त्योहार के सम्बन्ध में यह कही जाती है कि सत्यभामा को अपने सौन्दर्य पर बड़ा अभिमान था। वह समझती थी कि कृष्ण को मैं सबसे ज़्यादा प्यारी हूँ। इसलिए एक दिन जब नारद जी द्वारिकापुरी पहुँचे और सत्यभामा के महल में गए तो सत्यभामा ने

कहा—हे मुनि ! मैं चाहती हूँ कि कृष्ण मेरे जन्म-जन्मान्तर पति हों। इसका क्या उपाय है ? नारद मुनि ने सत्यभामा के स्वार्थ और अभिमान को देख कर उसे सबक़ सिखाना चाहा। उन्होंने कहा कि यह सिद्धान्त तो तुम्हें मालूम है कि जिस वस्तु की तुम जन्मान्तर में इच्छा रखती हो, वह इस जन्म में तुम्हें किसी सुपात्र ब्राह्मण को दान करनी चाहिए। यदि तुम चाहती हो कि तुम्हें इस जन्म के बाद कृष्ण मिलें, तो तुम्हें कृष्ण को दान कर देना चाहिए। तब सत्यभामा ने कृष्ण को नारद जी को दान कर दिया। नारद ने कृष्ण को अपना शिष्य बना लिया और उन्हें अपने साथ वीणा लिए रहने पर नियत किया, तथा अपने साथ लेकर स्वर्ग-लोक को चल दिए। जब यह समाचार कृष्ण की अन्य रानियों और महारानियों को मिला (रुक्मिणी के अलावा) तो सब वहाँ आकर नारद के पैरों पर पड़ीं और प्रार्थना करने लगीं कि कृष्ण को स्वर्ग न ले जाओ। किन्तु नारद ने कहा कि सत्यभामा ने कृष्ण को हमें दान कर दिया है। इसके बाद और सब रानियाँ सत्यभामा के पास पहुँचीं और उससे पूछने लगीं कि सोलह सहस्र एक सौ आठ स्त्रियों के हृदयेश्वर श्रीकृष्ण को दान कर देने का अधिकार केवल एक सत्यभामा को कैसे था ? सत्यभामा इसका ठीक उत्तर न दे सकीं और नारद से पूछने लगीं कि आप ही कोई उपाय

बतावें। नारद ने कहा कि कृष्ण के ही वज़न के बराबर हमें सोना और मोती दो, तो हम कृष्ण को न ले जायँ। सत्यभामा बड़ी प्रसन्न हुईं। तराज़ू लटकाया गया और सत्यभामा ने अपना सुवर्ण और मणियाँ तराज़ू पर रखना शुरू किया। किन्तु जिस ओर कृष्ण बैठे हुए थे उस ओर का पलड़ा ज़रा भी न उठा। तब और सब रानियों ने एक-एक कर अपना-अपना गहना पलड़े में रख दिया, किन्तु तराज़ू का पलड़ा ज़रा भी न उठा। नारद ने कहा कि रुक्मिणी कृष्ण की प्रियतमा है। उसके पास गहने ज़्यादा होंगे। उसी को बुलाओ। उसी के गहनों के रखने से शायद कृष्ण के बराबर सोना पूरा हो जाय। सत्यभामा को यह बात अच्छी न लगी, किन्तु लाचार थीं, अन्त में रुक्मिणी के पास गईं। रुक्मिणी उस समय स्वच्छ वस्त्र पहने तुलसी की पूजा कर रही थीं। सत्यभामा को देख, उठ कर खड़ी हो गईं और आदर-सत्कार के बाद उनसे पूछा कि आपने किस लिए कष्ट किया? सत्यभामा ने सब हाल कह सुनाया। रुक्मिणी ही ने उत्तर दिया कि मैं तो आभूषण पहनती ही नहीं और न मेरे पास इतने आभूषण हैं कि मैं उनसे जगत्पति की बराबरी कर सकूँ। किन्तु मैं कृष्णचन्द्र की प्रियतमा तुलसी से प्रार्थना करूँगी कि वे कोई ऐसी चीज़ दें, जो उनके पति श्रीकृष्ण की, वज़न में, बराबरी कर सके।

हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने पर तुलसी के वृक्ष से एक पत्ती गिर पड़ी। रुक्मिणी उसे लेकर सत्यभामा के साथ वहाँ आईं, जहाँ नारद जी थे। उन्होंने पहले तो नारद को प्रणाम किया, उसके बाद कृष्ण को और तत्पश्चात् तुलसी-दल को तराज़ू के पलड़े में रक्खा। रखते ही श्रीकृष्ण का पलड़ा एकदम से उठ गया। नारद जी उस पत्ती को लेकर चले गए। उसी समय से रुक्मिणी कृष्ण की पट-रानी कहलाईं। किन्तु उन्होंने अपना यह सौभाग्य तुलसी को दे दिया, जोकि जलन्धर की विधवा स्त्री थी, और उसी के साथ उस समय से प्रति वर्ष विवाह होने की प्रथा चल पड़ी।

卐

भीष्म एकादशी

कार्तिक-एकादशी को भीष्म-पञ्चक व्रत मनाया जाता है। इसी दिन भीष्मपितामह पाण्डवों के बाण से ज़ख़्मी होकर शय्या पर लेटे हैं, और लेटे-लेटे ही पाण्डवों को उपदेश किया है, जो शान्तिपर्व महाभारत में वर्णित है। इस दिन लोग व्रत रखते हैं और भीष्म ने जो उपदेश दिया है, उसे पढ़ते हैं।

दत्तात्रेय-जन्म



मार्गशीर्ष कृष्ण-दशमी को दत्तात्रेय-जन्म मनाया जाता है। दत्तात्रेय के तीन सिर और छः हाथ हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों देवताओं की यह संयुक्त मूर्ति मानी जाती है। इसके सम्बन्ध में यह कथा कही जाती है कि एक समय ब्रह्मा की स्त्री सावित्री, विष्णु की स्त्री लक्ष्मी और शिव की स्त्री पार्वती को अपने-अपने पातिव्रत्य और सुशीलता पर बड़ा अभिमान हो गया। ये समझने लगीं कि सारे विश्व में हम लोगों के समान पतिव्रता और सुशीला कोई और स्त्री है ही नहीं। नारद मुनि से यह अभिमान न देखा गया, उन्होंने इस अभिमान को तोड़ना चाहा। उन्होंने पहले-पहल पार्वती जी के पास जाकर कहा—"मैं सारे विश्व में भ्रमण करता फिरता हूँ, किन्तु अत्रि मुनि की स्त्री अनुसूया के समान पतिव्रता, शुद्ध-चरित्रा और सुशीला मैंने किसी भी लोक में न देखी। पार्वती जी को अनुसूया की यह प्रशंसा अच्छी न लगी। नारद जी के चले जाने के बाद उन्होंने शिवजी से कहा कि तुम अनुसूया पर इस प्रकार से कोप करो कि उसका पातिव्रत्य भ्रष्ट हो जाय। नारद ऋषि

पार्वती जी से यह बात कह कर अपनी माता सावित्री और अपने पिता ब्रह्मा जी के पास गए और वहाँ भी अपनी माता के सामने अनुसूया की प्रशंसा करने लगे। सावित्री को भी अनुसूया की प्रशंसा अच्छी नहीं मालूम हुई। उन्होंने भी ब्रह्मा से यह आग्रह किया कि किसी प्रकार से अनुसूया का पातिव्रत्य और सच्चरित्रता भ्रष्ट करो। नारद जी ने इसके बाद लक्ष्मी के सामने जाकर यही बात कही और लक्ष्मी जी भी अनुसूया की प्रशंसा न सुन सकीं और उन्होंने भी विष्णु भगवान् से कहा कि तुम अनुसूया को उनकी इस जगत्‌विख्यात सच्चरित्रता से भ्रष्ट कर दो।

तीनों देवता अपनी-अपनी स्त्रियों से प्रेरित होकर अत्रि मुनि की कुटी की ओर अनुसूया को उसके धर्म और कीर्ति से भ्रष्ट करने के लिए चले। कुटी के द्वार पर आकर उन्होंने भिक्षा माँगी। अनुसूया भिक्षा लेकर आगई; किन्तु उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया और कहा कि हम लोग इच्छानुसार भोजन करेंगे। अनुसूया इस पर भी राज़ी हो गई। उनसे कहा कि आप लोग जाकर नदी में स्नान कीजिए और फिर आइए। इतने में मैं भोजन तैयार करती हूँ। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, जो संन्यासी का रूप धारण करके आए थे, स्नान करने गए और जब लौटे तो उनके लिए भोजन तैयार मिला। जब अनुसूया उनके सामने भोजन का थाल लाई, तो उन्होंने उसे खाने से इन्कार किया और

कहा कि जब तक तुम नग्न होकर हमारे लिए भोजन न परोसोगी, तब तक हम लोग भोजन न करेंगे। अनुसूया को यह बात सुन कर बहुत घृणा और क्रोध उत्पन्न हुआ; किन्तु जब उसने ज़रा विचार किया तो उसे देवताओं के इस छल-कपट का पता चल गया। वह अपने पति के पास गई, उनका पैर धोया और उसी जल को लाकर इन देवताओं के ऊपर डाल दिया। इस जल के प्रभाव से ब्रह्मा, विष्णु और महेश, तीनों दुधमुँहे बच्चे हो गए। तब अनुसूया नग्न हो गई और हरेक को उठा कर उनकी इच्छा भर उन्हें अपना दूध पिलाया और फिर तीनों को पालने में डाल कर डोलाने लगी। जब कई दिन हो गए और ब्रह्मा, विष्णु, महेश, तीनों में से कोई भी न लौटा, तो इनकी स्त्रियाँ बड़ी चिन्तित हुईं और रो-रोकर इधर-उधर अपने-अपने पति को तलाश करने लगीं। स्वर्ग-लोक के चौराहे पर इनसे और नारद से भेंट हो गई। इन्होंने नारद से पूछा—तुमने कहीं हमारे पतियों को देखा है? नारद को यद्यपि सब हाल मालूम था; किन्तु उन्होंने केवल इतना कह कर टाल दिया कि उस रोज़ मैंने उन सबों को अत्रि मुनि के आश्रम की ओर जाते देखा था। सावित्री, लक्ष्मी और पार्वती तीनों अत्रि मुनि के आश्रम पर पहुँचीं और वहाँ जाकर अनुसूया से पूछा—क्या यहाँ हमारे पति लोग आए थे? अनुसूया ने उन्हें उस पालने को दिखाया, जहाँ

यह तीनों देवता शिशु-अवस्था में पड़े थे और उनसे कहा—यही तुम्हारे पति हैं। अपने-अपने पति को तुम लोग पहचान लो। तीनों बच्चे एक ही समान थे, इसलिए उनका पहचानना मुश्किल था; किन्तु लक्ष्मी जी ने बहुत ज़्यादा ग़ौर करने के बाद उनमें से जिस एक को विष्णु समझ कर उठाया, वह महादेव जी निकले, इस पर लक्ष्मी का बड़ा उपहास हुआ।

यह अवस्था देखकर लक्ष्मी, पार्वती आदि अनुसूया से हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगीं कि हमें अपने-अपने पति प्रदान करो। अनुसूया ने इस पर कहा कि चूँकि इन्होंने हमारा दूध पिया है, इसलिए हमारे बच्चे हो चुके और इन्हें किसी न किसी रूप में हमारे बालक होकर रहना पड़ेगा। इस पर यह निश्चित हुआ कि ये तीनों देवता एक संयुक्त स्वरूप धारण करें, यही दत्तात्रेय का जन्म था। इसके बाद अनुसूया ने अपने पति के पैर धोए और वही जल फिर उनके ऊपर डाल दिया। इससे इन देवताओं ने अपना पुराना रूप धारण कर लिया।

वामन द्वादशी



दैत्यराज विरोचना का पुत्र वलि वड़ा प्रतापी था। वह जैसा वलवान् था, वैसा ही युद्ध-विद्या-विशारद भी था। उससे बड़े-बड़े राजा-महाराजा, यहाँ तक कि देवता-गण भी थर-थर काँपते थे। एक वार रावण उसके वल की परीक्षा करने गया था। वलि ने अपना कवच उठाने के लिए उससे कहा। रावण न उठा सका और लज्जित होकर वहाँ से चला गया। धीरे-धीरे वलि का प्रताप इतना बढ़ा कि देवताओं को शङ्का होने लगी। उसने अपने बाहु-वल से कितने ही देवताओं को जीत कर क़ैद कर रक्खा था। यह देख, बहुत से देवता एकत्र होकर विष्णु भगवान् के पास अपना कष्ट निवेदन करने के लिए गए।

इस समय विष्णु भगवान् क्षीर-सागर में शेषनाग पर सोए हुए थे। देवताओं की स्तुति सुनकर भगवान् बोले—आप लोग चिन्ता न करें। शीघ्र ही वलि का प्रताप नष्ट होगा, उसका गर्व खर्व हो जायगा।

विष्णु भगवान् की बातों से सन्तुष्ट होकर देवता अपने-अपने स्थान पर लौट आए और बलि के मान-मर्दन की राह देखने लगे।

यद्यपि-बलि ने देवताओं से कितनी ही वार युद्ध किया था, पर वह वास्तव में बड़ा दानी था। वह जिस समय पूजन करने बैठता, उस समय जो कोई उससे जो कुछ आकर माँगता था, वही पाता था। उसके दान की यह कीर्त्ति देश-देशान्तर में फैली हुई थी। उसका दान-प्रताप इतना बढ़ा हुआ था कि इन्द्र को भी शङ्का हो गई थी कि कहीं अपने दान-बल से वह मेरे सिंहासन पर अपना अधिकार न जमा ले और देवताओं का भी राजा न बन बैठे। इस भय से इन्द्र भी थर-थर काँपा करता था।

इसी तरह बहुत दिन हो गए, पर राजा बलि का कुछ न हुआ। न तो देवता ही उसके बन्धन से मुक्त हुए, न देवराज की शङ्का ही किसी तरह मिटी। यह देख, देवताओं ने सोचा कि शायद विष्णु भगवान् भूल गए। अतः इस वार बहुत से देवता एकत्र हो, विष्णु भगवान् के पास जाकर उनकी नाना प्रकार से स्तुति करने लगे। देवराज इन्द्र ने भी अपनी दुख-कथा कह सुनाई।

सुन कर विष्णु भगवान् हँस पड़े और बोले—देवराज, शङ्कित न हों। आपका इन्द्रासन कोई न ले सकेगा। पर समय आए विना कोई काम नहीं होता। दैत्यराज बलि कोई साधारण जीव नहीं है। उसको नीचा दिखाना कोई साधारण काम नहीं है। वह अपूर्व दानी है, तपस्वी है। उसकी तपस्या का फल जब तक नष्ट नहीं होता, तब तक

कोई भी उसका कुछ नहीं विगाड़ सकता। अतः आप लोग शान्त हों। शीघ्र ही वह समय आएगा, जब आप लोगों की शङ्का दूर हो जायगी। देवी अदिति ने अत्यन्त कठोर तपस्या कर मुझसे वरदान प्राप्त कर लिया है कि मैं पुत्र-रूप में उनके गर्भ में जन्म धारण करूँ। अतः वह समय शीघ्र ही आने वाला है, जब पुण्यात्माओं का दुख दूर करने के लिए मुझे भारत में जन्म ग्रहण करना पड़ेगा। अब आप लोग अपने-अपने स्थान पर जायँ और निःशङ्क-भाव से, सुख से अपने दिन बिताएँ।

देवतागण फिर भी सन्तोष कर अपने-अपने स्थान पर चले गए। इधर यथासमय देवी अदिति गर्भवती हुईं और नवें मास में उनके गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह पूरा बौना था। उसके हाथ-पैर छोटे-छोटे, पर सिर बहुत बड़ा था। इस वामन को देख कर अदिति मन में बड़ी प्रसन्न हुईं। उन्होंने समझ लिया कि किसी उद्देश्य से इसी रूप में भगवान् ने मेरे घर में जन्म ग्रहण किया है। इधर उसी दिवस दैत्यों में हाहाकार मच गया। इस वामन के जन्म का समाचार सुन कर वे अत्यन्त शङ्कित हुए।

पुत्र-जन्म का समाचार सुन कर अदिति जैसी प्रसन्न हुईं, वैसी ही प्रसन्नता महर्षि कश्यप को भी हुई। भगवान् विष्णु को पुत्र-रूप में अपने घर में आया देख, उनकी प्रसन्नता का वारापार न रहा। उन्होंने उसी समय अन्यान्य

ऋषिगण को निमन्त्रण देकर बुला भेजा, जातिकर्म तथा नामकरण आदि संस्कार किए। इसके बाद यथासमय उनका यज्ञोपवीत-संस्कार भी हुआ। उस काल ब्राह्मण-वेश में यज्ञोपवीत, कुशचर्म पहने हुए वामन बड़े ही शोभायमान दिखाई देने लगे।

इन दिनों राजा बलि एक यज्ञ कर रहा था। इस यज्ञ-काल में भी उसका यही नियम था कि जो कोई उससे कुछ माँगता था, बलि निःसङ्कोच भाव से उसे वह देता था। वामन ने यही अवसर उपयुक्त जाना और उसके द्वार पर जा पहुँचे।

राजा बलि यज्ञ-मण्डप में बैठा हुआ था। अनेक ऋषि-मुनि तथा ब्राह्मण वहाँ विराजमान थे। दैत्यों के कुल-गुरु शुक्राचार्य भी उपस्थित थे। इसी समय द्वारपाल ने वामन वेषधारी एक ब्राह्मण के आगमन की सूचना दी। सुनते ही राजा बलि ने उसे भीतर बुला भेजा। उसका वह विचित्र वेश देख कर सारी सभा आश्चर्य-चकित हो गई। यद्यपि वामन का वेश विचित्र था, तथापि उसके चेहरे पर एक अलौकिक तेज झलक रहा था।

वामन का यह वेश देख कर शुक्राचार्य के मन में सन्देह हुआ। उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से विचार लिया कि वामन कोई साधारण पुरुष नहीं है—यह अवश्य ही कोई अवतार है। अतः सम्भव है कि राजा बलि पर कोई

आपत्ति आ जाए। इसलिए राजा बलि को विशेष रूप से उन्होंने सावधान कर दिया।

पर राजा बलि को उनकी बात पर विश्वास न हुआ। बलि ने कहा—क्या चिन्ता है? यह सब धन-वैभव कोई अपने साथ लेकर नहीं जाता। यदि यह चला ही जायगा, तो मेरा क्या बिगड़ जायगा?

शुक्राचार्य ने बहुत-कुछ समझाया, पर बलि ने एक न मानी। उसने तुरन्त ही वामन को अपने पास बुला कर कहा—क्या माँगते हो, माँगो!

वामन ने कहा—अधिक कुछ नहीं, केवल तीन पग पृथ्वी। यदि इतनी कृपा आप करें तो मैं अपने पढ़ने के लिए एक कुटी बनवा लूँ और उसी में बैठ कर विद्याध्ययन किया करूँ।

बलि ने हाथ में कुश और जल उठा लिया, पर शुक्राचार्य दान-मन्त्र कहने के लिए किसी तरह तैयार न हुए। वे बारम्बार राजा बलि को इस तरह पृथ्वी दान करने के लिए निषेध करने लगे।

पर विनाश-काल में बुद्धि भी विपरीत हो जाती है। शुक्राचार्य के लाख मना करने पर भी बलि न माना। लाचार शुक्राचार्य को दान-मन्त्र कहना ही पड़ा। बलि ने वामन की इच्छानुसार तीन पग पृथ्वी दान कर दी।

यह कार्य समाप्त होते ही वामन ने एक पैर से भूमि,

दूसरे से आकाश में अधिकार जमा लिया, और बोले—अब तीसरे पैर का स्थान बताओ।

बलि ने अपनी पीठ दिखा दी। इस अद्भुत और आश्चर्यमय कार्य को देख कर सभी विस्मित हो पड़े। चारों ओर दुन्दुभी बजने लगी। सभी साधु-साधु कहने लगे। जितने आदमी वहाँ उपस्थित थे, उनमें से कोई भी इस रहस्य को नहीं समझ सका।

इसके बाद वामन ने सब दैत्यों को विजय किया और तीनों लोकों पर अधिकार जमा कर बलि से बोले—अब तुम अपने दल-बल सहित पातालपुरी में जाकर स्वच्छन्दतापूर्वक राज्य करो। अब तुम्हें किसी प्रकार की चिन्ता न रहेगी, सदैव आनन्द के साथ अपने दिन विताओगे। इस इन्द्र का समय बीतने पर तुम्हीं इन्द्रत्व का पद प्राप्त करोगे। बलि ने भगवान् वामन से इतना सुनते ही प्रणाम कर कहा—आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।

इतना कह कर बलि पातालपुरी को चला गया।

श्रीकृष्ण बोले—महाराज युधिष्ठिर! जिस दिवस वामन ने बलि को छला था, उस दिवस द्वादशी-तिथि थी, इसीलिए इसका नाम वामन-द्वादशी पड़ा है। भाद्र-मास की शुक्ल-द्वादशी को जो नियमपूर्वक नदी में स्नान कर यह व्रत करता है और वामन का पूजन करता है, उसके सब पाप तो छूट ही जाते हैं, साथ ही उसके सब मनोरथ भी

उसी तरह पूरे हो जाते हैं, जिस तरह अदिति और कश्यप के हुए अथवा देवताओं के मनोरथ परिपूर्ण हुए। इसलिए इस व्रत को अत्यन्त श्रद्धापूर्वक सब किसी को करना चाहिए।

धन त्रयोदशी

चैत्र कृष्ण त्रयोदशी को बङ्गाल में लक्ष्मी-पूजा होती है।

इसके सम्बन्ध में यह कथा कही जाती है कि एक समय विष्णु भगवान् मृत्यु-लोक को आ रहे थे, तब लक्ष्मी ने कहा—मुझे भी ले चलो। विष्णु ने सङ्कोच किया और कहा कि अगर तुम मेरी आज्ञा को अक्षरशः मानने की प्रतिज्ञा करो, तो मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूँ। लक्ष्मी जी राज़ी हो गईं। मृत्युलोक में एक स्थान पर पहुँच कर विष्णु ने लक्ष्मी से कहा कि तुम यहीं ठहर जाओ; किन्तु दक्षिण की ओर न देखना, मैं अभी आता हूँ। यह कह कर विष्णु जी चल दिए। जब वह नज़र से ग़ायब हो गए, तब लक्ष्मी के दिल में कौतूहल पैदा हुआ कि आख़िर इन्होंने मुझे दक्षिण की ओर देखने से क्यों रोका। लक्ष्मी जी ने विष्णु की आज्ञा का कुछ ख़्याल न करके दक्षिण की ओर देखा, तो वहाँ सरसों का खेत फूला हुआ दिखाई दिया। वे उस खेत में गईं और उसके फूल तोड़ कर अपने सिर के बालों को ख़ूब अच्छी तरह सँवारा। जब विष्णु जी लौटे, तो उन्होंने लक्ष्मी को इस प्रकार सुशोभित देखा। उन्हें जब यह मालूम हुआ कि लक्ष्मी ने खेत वाले की बिना

आज्ञा लिए ही फूल तोड़ लिए हैं, तो उन्होंने बताया कि इस देश में तो यह क़ायदा है कि जो इस प्रकार से किसी के धन को ले ले, उसे उसके यहाँ बारह वर्ष तक सेवा करनी पड़ती है। नियम के पालन के लिए लाचार होकर विष्णु जी ने ब्राह्मण का रूप धारण करके और लक्ष्मी जी को ब्राह्मणी का रूप धारण करा के खेत के मालिक से सब हाल कह सुनाया और लक्ष्मी जी को सेवा करने के लिए छोड़ आए, और कह आए कि बारह वर्ष के बाद आकर ले जाऊँगा। लक्ष्मी जी ने ब्राह्मण के यहाँ रहना शुरू किया, तो उन्हें मालूम हुआ कि ब्राह्मण के यहाँ खाने तक को नहीं है। लक्ष्मी ने इस पर उस ब्राह्मणी की एक बहू से कहा कि तुम स्नान करके देवी की पूजा करो और रसोई में जाओ। वहाँ तुम्हें सब कुछ खाने को मिलेगा। ब्राह्मणी की बहू ने ऐसा ही किया और रसोई में जाकर जब देखा तो हर प्रकार का खाना मौजूद पाया। इसी प्रकार लक्ष्मी की सलाह के अनुसार चलने पर इस ब्राह्मण का घर धन-धान्य से परिपूर्ण हो गया। ऐसी प्रभावशालिनी स्त्री से सेवा लेना ब्राह्मणी ने उचित नहीं समझा; किन्तु लक्ष्मी ने कहा कि मैं बिना अपराध की सज़ा काटे हुए न जाऊँगी। चैत्र-कृष्ण त्रयोदशी को लक्ष्मी के बारह वर्ष समाप्त हुए। लक्ष्मी को घर के और सब लोग मानते थे; किन्तु एक मँझली बहू लक्ष्मी को बहुत सताती थी, इसलिए लक्ष्मी उसके

हाथ की कोई चीज़ नहीं खाती थीं। जो कुछ वह दे जाती थी, उसे अनार के वृक्ष के नीचे गाड़ देती थीं। जब चैत्र-कृष्ण त्रयोदशी को लक्ष्मी का बारहवाँ वर्ष समाप्त हुआ और उसी दिन वारुणी पर्व पड़ा, तब ब्राह्मणी सकुटुम्ब गङ्गा-स्नान के लिए जाने लगी। लक्ष्मी को भी साथ ले जाना चाहा ; किन्तु लक्ष्मी नहीं गईं। उन्होंने केवल चार कौड़ी बड़ी बहू को दी कि गङ्गा में छोड़ देना। ब्राह्मणी की बहू ने जब उन कौड़ियों को गङ्गा में छोड़ा, तो उसमें इन कौड़ियों को लेने के लिए चार हाथ निकले। इसको देख-कर ब्राह्मणी और उसके कुटुम्ब को पूरा विश्वास हो गया कि हो न हो मेरे यहाँ की दासी ज़रूर कोई देवी है। जब घर पर आई, तो विष्णु भगवान् लक्ष्मी को वापस ले जाने को तैयार मिले। जब लक्ष्मी जी दासता से मुक्त हो गईं, तो उन्होंने अपना परिचय दिया और चलते समय कह गईं कि तुम अनार के नीचे खोदना, तुम्हें बहुत धन और रत्न मिलेंगे और भाद्रपद, कार्तिक, पूस और चैत्र में लक्ष्मी की पूजा अवश्य करना, इससे तुम्हारे यहाँ धन की कभी कमी न रहेगी। अनार के नीचे ब्राह्मणी और उसकी बहुओं ने जब खोदा, तो सबको तो रुपए-पैसे मिले, किन्तु जो बहू लक्ष्मी को सताती थी उसे साँप मिला, जिसने उसे काट खाया और वह मर गई।

हरतालिका-व्रत या तीज



यह व्रत श्रावण शुक्ल-पक्ष में तृतीया को किया जाता है। स्त्रियों के लिए इसे सबसे उत्तम व्रत बताया गया है। इसमें केले के खम्भे गाड़े जाते हैं। चित्र-विचित्र वस्त्रों से मण्डल को आच्छादित किया जाता है और शिव-पार्वती को बालू की मूर्ति स्थापित करके उसकी पूजा की जाती है। इसका फल यह बताया जाता है कि इसको करने वाली स्त्री विधवा नहीं होती।

हरतालिका-व्रत के अर्थ हैं "हरित, आलिभिः" अर्थात् जिसमें आलि सखियों के साथ पार्वती जी हरी गई हों। इसके सम्बन्ध में भविष्योत्तरपुराण में यह कथा लिखी है कि हिमवान नामक पर्वत पर पार्वती जी ने बाल्यावस्था में बहुत कठिन तप करना शुरू किया। बारह वर्ष तक केवल धुआँ पीकर रहीं और चौंसठ वर्ष तक सूखे पत्ते खाए। पार्वती जी के इस तप को देख कर उनके पिता बड़े चिन्तित हुए और सोचने लगे कि क्या करना चाहिए। इतने में नारद जी आगए और उन्होंने सलाह दी कि इस कन्या के लिए विष्णु भगवान् से बढ़ कर और कोई वर नहीं हो सकता। पार्वती जी के पिता सहमत हो गए।

किन्तु जब यह समाचार पार्वती जी ने सुना तो उन्हें बड़ा दुख हुआ। वह बेहोश होकर गिर पड़ीं। उन्होंने अपनी सखी से कहा कि महादेव जी के अलावा मैं किसी और से कदापि विवाह न करूँगी। तब सखियों ने उन्हें सलाह दी कि चलो ऐसी जगह भाग चलें, जहाँ तुम्हारे पिता जी को पता तक न चले। पार्वती जी को सखियाँ इसके बाद एक ऐसी जगह में ले गईं, जहाँ उन्हें कोई ढूँढ़ न सका। हिमवान ने अपनी कन्या को जब ग़ायब पाया तो तलाश करना शुरू किया। समझ लिया कि शेर या भालू खा गया होगा। इधर पार्वती जी भागती-भागती एक मनोहर नदी के किनारे पहुँचीं। वहाँ एक गुफा थी। बिना अन्न-जल खाए हुए उसी नदी के किनारे बालू की मूर्ति बना कर पार्वती जी ने शिव जी का आह्वान शुरू किया। यह श्रावण-शुक्ल तृतीया का दिन था। महादेव जी की समाधि इस ध्यान से भङ्ग हो गई और वह पार्वती जी के सामने आ पहुँचे और पूछने लगे कि क्या चाहती हो? पार्वती जी ने कहा कि अगर आप प्रसन्न हैं, तो मेरे साथ विवाह कर लीजिए। शिव जी एवमस्तु कह कर कैलाश पर चले गए। थोड़ी देर बाद जब हिमवान आए और उन्होंने अपनी कन्या को नदी के किनारे सोती हुई देखा, तो पार्वती को गोद में उठा लिया और पूछा तुम यहाँ कैसे चली आईं। पार्वती ने कहा कि जब मैंने सुना कि आप

मुझे विष्णु को देने वाले हैं, तो मैं भाग आई, क्योंकि मैं विष्णु के साथ विवाह नहीं करना चाहती। यदि आप मेरा विवाह महादेव जी के साथ करें, तो मैं घर को वापस जा सकती हूँ, अन्यथा नहीं। हिमवान ने पार्वती की बातें स्वीकार कीं और पार्वती का महादेव जी के साथ विवाह कर दिया।

सिद्धिविनायक पूजा
या
गणेश-चतुर्थी



यह पूजा भादों-कृष्ण की चतुर्थी को की जाती है। इस तिथि में गणेश जी की पूजा होती है। गणेश जी के जन्म के सम्बन्ध में यह कथा प्रसिद्ध है कि एक समय महादेव जी कहीं बाहर चले गए। घर पर केवल पार्वती जी ही अकेली रह गईं। पार्वती जी ने स्नान करना चाहा, किन्तु किसी गण को उस स्थान पर मौजूद न देख कर उन्हें यह चिन्ता हुई कि दरवाज़े पर किसे बिठाऊँ; क्योंकि भय यह था कि कहीं उनके स्नान के करते समय ही कोई आदमी या शिव जी स्वयं मकान में न आ जायँ। इसलिए उन्होंने अपने शरीर की मिट्टी से एक पुतला बना कर दरवाज़े पर बिठा दिया और स्वयं नहाने चली गईं। थोड़ी देर में शिव जी बाहर से वापस आए। जब मकान में घुसने लगे तो मिट्टी के इस पुतले ने उनको जाने से रोका। शिव जी को इस पर क्रोध आया। उन्होंने इसका सिर काट डाला और अन्दर चले गए। शिव जी को आते

हुए देख, पार्वती को विस्मय हुआ। उन्होंने पूछा कि तुम कैसे चले आए? क्या चौकीदार ने तुम्हे दरवाज़े पर नहीं रोका? शिव जी ने पूरा क़िस्सा कह सुनाया। जब पार्वती जी ने सुना कि उनका चौकीदार मार डाला गया, तो वह रोने लगीं और उन्होंने कहा कि जब तक मिट्टी का यह पुतला, जो मेरे पुत्र के समान है, फिर से जीवित नहीं होता, मैं शान्त न हूँगी। शिव जी को मजबूर होकर उसे जीवित करने का उद्योग करना पड़ा; किन्तु अभाग्यवश इतनी देर में उसका असली सिर कहीं ग़ायब हो गया। बहुत तलाश करने के बाद जब सिर न मिला, तो मजबूरन शिवजी ने हाथी का सिर उसमें जोड़ दिया। गणेश जी की उत्पत्ति इस प्रकार हुई। गणेश जी मङ्गल करने वाले और हर एक काम को सिद्ध करने वाले कहे जाते हैं। भाद्रपद की कृष्ण चतुर्थी को इनकी सुवर्ण की मूर्ति और दो-चार और चीज़ें दान में दी जाती हैं। इस व्रत का उपदेश स्कन्ध-पुराण के अनुसार कृष्ण जी ने कुरुक्षेत्र में युधिष्ठिर को किया था और इसी व्रत के प्रभाव से कौरवों पर विजय पाने की आशा दिलाई थी। कृष्ण जी ने कहा था—इस व्रत के करने से गणेश जी बहुत प्रसन्न होते हैं।

स्कन्धपुराण के अनुसार इस व्रत को पहले-पहल कृष्ण जी ने स्वयं उस समय किया था जबकि उन पर स्यमन्तक मणि के चुराने का दोष लगा था। स्यमन्तक

मणि चुराने का क़िस्सा यह है कि द्वारकापुरी में अग्रसेन नाम का एक यादव रहता था। उसके दो पुत्र थे—सत्रजित और प्रसेन। सत्रजित ने सूर्य देवता की बड़ी स्तुति और तपस्या की। सूर्य देवता ने प्रसन्न होकर सत्रजित को स्यमन्तक नाम की मणि दी और कहा कि यह मणि अमूल्य है। हर रोज़ प्रातःकाल इसके वज़न से अठगुना सोना इसमें से निकलता है; किन्तु जो पवित्र है वही इसे धारण कर सकता है। अगर कोई अपवित्र आदमी इसे छुएगा, तो तुरन्त मृत्यु हो जायगी।

सत्रजित यह मणि लेकर द्वारका आया। द्वारका-निवासी इस मणि को देख कर आश्चर्य से मुग्ध हो गए। उन्होंने उसके प्रकाश को देखकर समझा कि शायद यह सूर्य ही है। जब इस मणि को पहन कर सत्रजित कृष्ण से मिलने गया, तो कृष्ण बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा कि अगर ऐसा ही मणि मुझे मिल जाता, तो बहुत अच्छा था। कृष्ण के इन विचारों को सुनकर सत्रजित को यह भय हुआ कि कहीं ये मुझसे यह मणि ज़बरदस्ती न छीन लें। इस भय से उसने इस मणि को अपने भाई प्रसेन को दे दिया और उसे ख़बरदार कर दिया कि मनसा, वाचा, कर्मणा से पवित्र रहना, नहीं तो यह मणि तुम्हारे नाश का क़ारण हो जायगा।

एक दिन प्रसेन और कृष्ण शिकार को गए; किन्तु

कृष्ण तो लौट आए और प्रसेन वापस नहीं आया। सत्र-जित ने कहना शुरू किया कि कृष्ण ने मेरे भाई को मार डाला और मणि ले लिया। द्वारकानिवासी भी सन्देहपूर्ण बातें करने लगे। कृष्ण को जब यह पता चला कि उनकी बद-नामी हो रही है, तो उन्होंने यह निश्चय किया कि जङ्गल में जाकर देखें कि मणि क्या हुआ।

कृष्ण और कुछ सिपाही मणि की तलाश में जङ्गल की ओर चल पड़े। थोड़ी दूर जाने के बाद देखते क्या हैं कि प्रसेन और उसका घोड़ा मरा पड़ा है। देखने से यह भी मालूम हुआ कि किसी शेर ने उसे मार डाला है। शेर के पैरों के चिन्ह देखते-देखते यह लोग आगे बढ़े। थोड़ी देर के बाद इन्हें शेर मरा हुआ मिला; किन्तु मणि उसके पास भी नहीं था। ग़ौर से देखने पर मालूम हुआ कि रीछ और शेर से लड़ाई हुई है, इसलिए रीछ के पैरों के चिन्ह देखते-देखते यह लोग आगे बढ़े। अन्त में इन्हें एक गुफा मिली, जो बिलकुल अँधेरी थी। कृष्ण ने अपने साथियों को तो गुफा के द्वार पर छोड़ा और स्वयं उसके अन्दर गए। यह गुफा आठ सौ मील लम्बी थी। चलते-चलते जब गुफा के अन्त में पहुँचे, तो उन्हें एक महल दिखाई दिया। यहाँ उन्होंने देखा कि एक लड़का पालने पर लेटा है और मणि पालने में इस लड़के के खिलाने के लिए लटकाया हुआ है। वहीं एक सुन्दरी कन्या भी बैठी है, जो लड़के को पालने पर

सुला रही है। कृष्ण और कन्या की आँखें दो-चार होते ही एक-दूसरे पर मोहित हो गए। कन्या ने कृष्ण से कहा कि तुम अगर मणि के लिए आए हो तो मणि लेकर भाग जाओ, शोर न मचाओ; क्योंकि अगर मेरा पिता जामवन्त जगेगा, तो तुम्हें मार ही डालेगा। कृष्ण ने इसकी परवाह न की; बल्कि अपना शङ्ख ज़ोरों से बजाया। जामवन्त जाग पड़ा और आपस में लड़ाई आरम्भ हो गई।

गुफा के द्वार पर बैठे हुए लोगों को इन्तज़ार करते-करते जब बहुत दिन हो गए, तो उन्होंने यह समझा कि कृष्ण मार डाले गए। यह लोग द्वारका वापस आए और कृष्ण का क्रिया-कर्म करने लगे।

जामवन्त और कृष्ण में इक्कीस दिन तक लड़ाई होती रही। अन्त में जामवन्त को कृष्ण ने हरा दिया। जामवन्त ने प्रसन्न होकर अपनी कन्या और दायज में वही मणि कृष्ण को भेंट किया। कृष्ण जामवन्ती और मणि को लेकर द्वारकापुरी वापस आए और यादवों की सभा करके उसमें उन्होंने सारा हाल कह सुनाया। मणि सत्रजित को वापस दे दिया। सत्रजित ने कृष्ण की जो बदनामी की थी, उस पर उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ। उसने अपनी कन्या सत्यभामा का कृष्ण के साथ विवाह कर दिया और कृष्ण तथा सत्रजित मित्रता से रहने लगे।

स्यमन्तक मणि जब फिर सत्रजित के पास आया, तो शतधन्व और अक्रूर ने इस पर अपने दाँत लगाए—सत्रजित को मार कर इस मणि को छीन लेने की तरकीबें सोचने लगे। एक दिन जब कि श्रीकृष्ण जी हस्तिनापुर में थे और सत्यभामा अपने पिता के घर में थी, इन दोनों ने आकर सत्रजित को मार डाला और मणि लेकर चम्पत हुए।

सत्यभामा ने अपने पिता की मृत्यु और स्यमन्तक मणि की चोरी का क़िस्सा कृष्ण से कहा। कृष्ण और बलराम दोनों शतधन्व को मारने के लिए चले। शतधन्व ने जब यह क़िस्सा सुना, तो उसने मणि अक्रूर को दे दिया। वह उसे लेकर बनारस भाग गया और स्वयं दक्षिण को रवाना हो गया। कृष्ण ने शतधन्व का पीछा किया और उसे मार डाला; किन्तु मणि नहीं मिला। जब कृष्ण बिना मणि के वापस आए, तो प्रजा को और बलराम जी को भी यह शङ्का हो गई कि कृष्ण ने मणि अपने पास रख लिया है। कृष्ण को यह समाचार सुनकर बड़ा खेद हुआ। यह चिन्ता में बैठे हुए थे कि नारद जी आए। उनसे उन्होंने पूरा हाल कहा। तब नारद जी ने उन्हें बताया कि आपने भादों की कृष्ण चौथ को चन्द्रमा देखा है, इस कारण आप पर इस प्रकार कलङ्क लग रहे हैं। आप गणेश जी की विधिवत् पूजा कीजिए, इससे आपकी बदनामी दूर हो जायगी। कृष्ण ने नारद से पूछा कि

भादों की चौथ को चन्द्रमा देख लेने से कलङ्क क्यों लगता है? नारद ने कहा कि एक समय गणेश जी लड्डू हाथ में लिए हुए स्वर्ग जा रहे थे। रास्ते में चन्द्रलोक पड़ा। वहाँ पहुँचे तो ठोकर खाकर गिर पड़े। इस पर चन्द्रमा हँस पड़ा। गणेश जी को क्रोध आया, उन्होंने उसे यह शाप दे दिया कि जो तेरा मुँह देखेगा, कलङ्की कहलाएगा। चन्द्रमा यह शाप सुनकर पश्चात्ताप से कमल-सम्पुट में अपना मुँह छिपा कर बैठ गया। चन्द्रमा के अभाव से देवताओं में खलबली मच गई। सबों ने जाकर ब्रह्मा से स्थिति बताई। ब्रह्मा ने कहा कि गणेश की स्तुति के अतिरिक्त चन्द्रमा के इस कलङ्क और शाप को मिटाने का कोई मार्ग नहीं है। ब्रह्मा ने यह भी बताया कि पूजा कैसे होगी। बृहस्पति ने गणेश-पूजा-विधि चन्द्रमा को बताई। चन्द्रमा ने गणेश की पूजा की। गणेश जी प्रसन्न हुए। अपना पूरा शाप तो उन्होंने वापस नहीं लिया, किन्तु इसका प्रभाव परिमित कर दिया और अपना अन्तिम शाप यह निश्चित किया कि जो केवल एक रोज़, अर्थात् भादों की कृष्ण-चौथ को चन्द्रमा का मुख देखेगा, वही कलङ्कित होगा।

उन्होंने इस कलङ्क को मिटाने का भी उपाय बता दिया कि कृष्ण-पक्ष भादों की चतुर्थी को गणेश की पूजा करने से कलङ्क दूर हो जाता है।

नागपञ्चमी



सावन महीने की शुक्ल पक्ष की पञ्चमी नागपञ्चमी कहलाती है। इस पञ्चमी को नाग की पूजा की जाती है। इस दिन दरवाज़े के दोनों तरफ़ गोबर से नागों का चित्र खींचा जाता है। जल, दूध और घी से इनका स्नान कराया जाता है और गेहूँ, दूब, धान की खील, दही, दूध आदि से इनका पूजन किया जाता है। अगर कहीं साँप की भीट होती है, तो वहाँ उनका दूध, चावल आदि से पूजा-सत्कार किया जाता है। काले रङ्ग के सर्प की विशेष पूजा लिखी है। इस पूजन का फल यह लिखा है कि इसके करने से सप्तकुल पर्यन्त साँप का भय नहीं रहता। एक विशेष मन्त्र के भय से सर्प के विष से आदमी बच जाता है।

इसके बारे में दो कथाएँ कही जाती हैं। पहली कथा यह है कि किसी ब्राह्मण के सात बहुएँ थीं। छः के तो नैहर था, किन्तु जो सबसे छोटी थी उसके नैहर में कोई नहीं था। जब सावन का महीना आया, तो सब बहुओं को तो उनके नैहर वाले आकर ले गए, किन्तु सातवीं के कोई था ही नहीं। उसने कहा कि शेषनाग के अलावा हमारा और कौन

है। शेषनाग को इस स्त्री की इस करुणापूर्ण दशा पर बहुत दया आई, इसलिए उन्होंने एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण किया और उक्त ब्राह्मण के यहाँ जाकर कहा कि तुम्हारी कनिष्ठ बहू मेरी भतीजी है, उसे तुम मुझे विदा कर दो। ब्राह्मण ने इन्हें कभी देखा तक नहीं था, इसलिए बड़ा आश्चर्य हुआ। ब्राह्मण ने अपनी बहू से इसके बारे में पूछा। यह बेचारी ससुराल में रहते-रहते इतनी दुखी हो गई थी कि इसने कहा—हाँ, मैं जानती हूँ। शेषनाग इस तरह से ब्राह्मण का रूप धारण करके इस वधू को विदा करा लाए। थोड़ी दूर चल कर जब यह किसी बिल के पास पहुँचे, तो अपना असली नाग-रूप धारण कर लिया। लड़की को परेशानी तो हुई; किन्तु समझाने पर शेषनाग के फण पर सवार होकर नागलोक को चल दी। नागलोक में जाकर यह लड़की रहने लगी। शेषनाग ने और नागों से यह कह दिया था कि कोई इसे न काटे, इसलिए यह मज़े में शेषनाग के यहाँ रहा करती थी। एक दफ़ा ऐसा हुआ कि शेषनाग के यहाँ बच्चे पैदा हुए। छोटे-छोटे बच्चे ज़मीन पर रेंगने लगे। उन्हें देख कर यह घबड़ाई। इसलिए शेषनाग की स्त्री ने इस लड़की से कहा कि तुम अपने हाथ में पीतल का चिराग़ लटकाए रहो, इससे तुम्हें भय न होगा। इसके हाथ से चिराग़ गिर गया जिससे कई साँपों की पूँछें कट गईं। मामला उस समय रफ़ा-दफ़ा कर

दिया गया। थोड़े दिन रह कर यह फिर सुसराल चली आई। श्रावण की पञ्चमी को इसे अपने नाग भाई याद आए। इसने एक पाटी पर नाग की तसवीर बना कर उनकी पूजा की और परमात्मा से प्रार्थना करने लगी कि वह नाग भाइयों को प्रसन्न और जीवित रक्खे। उधर श्रावण-पञ्चमी को शेषनाग के पुँछकटे लड़कों ने अपनी माता से अपनी पूँछ के नाश होने का कारण पूछा। माता ने पूरा क़िस्सा बता दिया। नागों को बड़ा क्रोध आया और वे इससे बदला लेने के लिए इसके घर पर आए। सौभाग्य-वश जिस समय यह नाग लोग इसके घर पर पहुँचे, उसी समय यह लड़की नाग भाइयों के कुशल-क्षेम की प्रार्थना कर रही थी। इस बात को देख कर क्रुद्ध नागों का दिल पसीज गया और वे बहुत प्रसन्न हुए। इसने अपने नाग भाइयों को दूध-चावल खाने को दिया। चलते समय वे लोग इसके लिए एक मणिमाला छोड़ गए, जिसके प्रभाव से यह आनन्दपूर्वक रहने लगी।

दूसरी कथा इसके विषय में यह कही जाती है कि एक किसान खेत जोत रहा था। अकस्मात् उसके हर का फार किसी साँप के बिल में धँस गया, जिससे उस बिल में जितने साँप थे, मर गए। थोड़ी देर में जब उन साँपों की माँ वापस आई, तो अपने बच्चों को मरा पाकर उसने किसान के सारे कुटुम्ब को काट लिया; किन्तु उसका

क्रोध शान्त नहीं हुआ। उसे यह मालूम हुआ कि इस किसान के एक कन्या है; अतः उसे मारने के लिए वह उसके घर को चली। जब नागिन उसके घर पहुँची, तो वह शेषनाग की पूजा कर रही थी। थोड़ी दूर पर चन्दन, अक्षत और दूध रक्खा हुआ था। नागिन ने चन्दन अपने शरीर में लगाया और दूध-चावल पान किया। तबीयत ठण्ढी हुई और अपनी इस प्रकार पूजा-सत्कार देख कर नागिन लड़की से विशेष रूप से ख़ुश हो गई। जब लड़की ने ध्यान के पश्चात् अपनी आँखें खोलीं, तो उसे अपने कुटुम्ब के नाश का समाचार मिला। लड़की को बड़ा दुख हुआ। उसने नागिन से प्रार्थना की कि उसके कुटुम्ब को जिला दे। नागिन प्रसन्न थी ही, उसने अमृत दिया, जिसको पिला कर इस लड़की ने अपने सारे कुटुम्ब को फिर से जिला दिया। कहते हैं कि उस समय से श्रावण-पञ्चमी को हल चलाना मना कर दिया गया है और किसी को शाक-पात तक काटने की इजाज़त नहीं है, उसी समय से नागों की पूजा भी शुरू हुई है।

कपिला षष्ठी



यह त्योहार साठ वर्ष में एक दफ़ा पड़ता है। कहते हैं, इस दिन नारदी को नारद का रूप मिला था। नारद मुनि बाल-ब्रह्मचारी थे। एक दिन ये गङ्गा में स्नान कर रहे थे, वहाँ पर इन्होंने दो मछलियों को आपस में क्रीड़ा करते देखा। यह देख कर इन्हें गृहस्थ-जीवन में रहने की इच्छा पैदा हुई। इन्होंने चाहा कि कहीं विवाह हो जाय तो अच्छा हो; किन्तु इनके पास रुपया-पैसा तो था नहीं, कन्या का मिलना इन्हें असम्भव सा ही मालूम होने लगा। इन्होंने अपने दिल में सोचा कि चलो कृष्ण के पास चलें। उनके सोलह हज़ार एक सौ आठ रानियाँ हैं, अगर वह उनमें से एक रानी भी दे डालेंगे, तो उन्हें दिक़्क़त भी न होगी और मेरा काम चल जायगा। यह विचार कर नारद द्वारकापुरी चले। वहाँ पहुँच कर उन्होंने कृष्ण से कहा कि आपके पास ज़रूरत से ज़्यादा रानियाँ हैं, आप इतनी रानियों के पास जा भी न सकते होंगे; इसलिए हमें कम से कम एक रानी दे दीजिए। कृष्ण जी ने कहा कि जाओ और जहाँ तुम देखो कि मैं न होऊँ, उस घर की स्त्री ले जाओ। नारद ने सारा रनवास छान डाला, उन्हें एक भी ऐसा स्थान न मिला, जहाँ कृष्ण

जी न हो।। निराश होकर वे वापस आ रहे थे कि सन्ध्या का समय आ गया, जप-वन्दना आदि करने के लिए यह गङ्गा के किनारे चले; किन्तु मन में विवाह करने का ही विचार मौज मार रहा था। जैसे-तैसे गङ्गा के किनारे पहुँचे। स्नान करने के लिए नदी में उतरे; लेकिन मन में यही सोच रहे थे कि कृष्ण के पास जाकर एक स्त्री माँगनी है। नारद इन विचारों में डूबे हुए थे और स्नान कर रहे थे, किन्तु इन्होंने ज्योंही दूसरा गोता लगाया और उठे तो स्वयं ही पुरुष से स्त्री हो गए—नारद से नारदी बन गए। आश्चर्य और विस्मय से परेशान ज्योंही यह बाहर निकले, इन्हें एक संन्यासी मिल गया। वह इन्हें पकड़ ले गया और इनके साथ उसने ज़बरदस्ती विवाह कर लिया। साठ वर्ष तक यह संन्यासी नारदी के साथ रहा। साठ वर्ष में नारदी के साठ लड़के * पैदा हुए। लड़कों

* नारदी के साठ पुत्र ये हैं—प्रभव; विभव; शुक्ल; प्रमोद; प्रजापति; आङ्गीरा; श्रीमुख; भव; युव; धत; ईश्वर; बहुधान्य; प्रमाथी; विक्रम; वृष; चित्रभानु; सुभानु; तारण; पार्तिव; व्याय; सर्वजित; सर्वधारी; विरुधि; विकृति; खर; नन्दन; विजय; जय; मनमय; दुर्मुख; हेमलम्बी; विलम्बी; विकारी; शरवरी; प्लव; शुभकृत; शुभान; क्रुधि; विश्ववासु; विरुधिकत; परिधावी; प्रमादी; अनन्द; राक्षस; नल; पिंगल; कलयुक्त; सिद्धार्थी; रौद्र; दुरमति; दुन्दुभि; रुधिरोद्गामी; रक्ताक्षि; क्रुधन; क्षय आदि।

की सेवा-शुश्रूषा से दुखित नारदी को गृहस्थ-जीवन से बड़ा दुख हुआ और यह भगवान् से प्रार्थना करने लगीं कि इस महा दुख से निवारण करो। विष्णु भगवान् ने दर्शन दिया और नारद-हृदय में गृहस्थ बनने की जो अभिलाषा पैदा हुई थी, उसकी असत्यता का उपदेश दिया। इतने में उनके साठों लड़के इकट्ठे हो गए और चिल्लाने लगे। कोई खाना माँगने लगा, कोई पानी। नारदी ने विष्णु भगवान् से प्रार्थना की कि इन बच्चों को चुप कीजिए। विष्णु ने इन बच्चों को क्रमानुसार एक-एक वर्ष का राज्य दिया और नारदी को फिर नारद बना दिया। हर एक साल पर इन ६० बच्चों में से एक न एक का अधिकार होता है और कपिला षष्ठी के बाद फिर नए सिरे से क्रम प्रारम्भ होता है।

*

शीतला षष्ठी

माघ शुक्ल छठी को यह त्योहार मनाया जाता है। इसके सम्बन्ध में यह कथा कही जाती है कि एक ब्राह्मण था, जिसके एक स्त्री, एक पुत्र और एक पुत्रवधू थी। ब्राह्मण के कोई पौत्र नहीं था; इसलिए ब्राह्मण और उसके सारे कुटुम्ब ने साल भर तक बराबर छठी की स्तुति की, जिसके प्रभाव से उसकी पुत्रवधू गर्भवती हुई; किन्तु साल भर से ज़्यादा गर्भवती हुए हो गया और कोई बच्चा

पैदा हुआ। एक दिन उसकी वधू नदी पर स्नान करने आई और वहाँ अकस्मात् फ़िसल कर गिर गई, जिससे उसके पेट से कुम्हड़े के बराबर एक थैला निकल पड़ा। वहू ने घर आकर अपनी सास से पूरा हाल कह सुनाया। ब्राह्मण उस थैले को घर ले गया और वहाँ खोल कर देखा, तो मालूम हुआ कि उसके अन्दर साठ बच्चे थे। ब्राह्मण ने इन्हें पालना आरम्भ किया। जब यह विवाह करने योग्य हुए, तो इनकी माता ने यह प्रण कर लिया कि इनका विवाह उसी के यहाँ होगा जिसके साठ कन्याएँ होंगी। बुड्ढा ब्राह्मण इस प्रण को सुन कर ऐसे आदमी की तलाश में निकला। भाग्यवश इसे थोड़ी दूर चल कर एक ऐसा कुटुम्ब मिल गया जिसके यहाँ साठ कन्याएँ थीं; किन्तु वह दायज के कारण इनका विवाह करने में असमर्थ था। अन्त में विवाह हो गया। जब कन्याएँ वहू होकर अपने ससुराल आईं, तो एक दफ़ा शीतला षष्ठी पड़ी। इस रोज़ विशेष रूप से ठण्ढ पड़ रही थी। ब्राह्मणी ठण्ढे पानी से जाड़े के मारे नहाना नहीं चाहती थी, इसलिए उसने अपनी पौत्रवधुओं से कहा कि पानी गरम कर दो। यह बात शीतला षष्ठी के दिन वर्जित है। फिर उसने कहा कि हमारे लिए चावल बना दो। यह भी निषिद्ध है, इसलिए पौत्रवधुओं ने कुछ इनकार किया, तब बुड्ढी ब्राह्मणी बहुत नाराज़ हुई। क्रोध के डर से पौत्रवधुओं ने उसकी आज्ञा

का पालन किया। परिणाम यह हुआ कि दूसरे दिन उसका सारा कुटुम्ब, उसकी गाएँ इत्यादि मरी हुई मिलीं। ब्राह्मणी ने विलाप करना आरम्भ किया। थोड़ी देर पश्चात् षष्ठी देवी ब्राह्मणी का रूप धर कर आईं और कहने लगीं कि अपने कुटुम्ब के हर एक व्यक्ति पर भात लगा कर उसे गरम पानी से नहला दो, जैसा तुमने स्वयं कल किया था। ऐसा करने से सब फिर जीवित हो जायँगे। इस बात को सुन कर ब्राह्मणी को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। फिर षष्ठी देवी ने कहा कि शीतला षष्ठी को दही और इमली मिला कर कुत्ते को टीका देना और यही अपने कुटुम्ब के हर एक व्यक्ति के साथ करना। बच्चों के हाथ में इमली बाँधना। यह कह कर ब्राह्मणी अन्तर्धान हो गई। बुढ़िया ने वैसा ही किया और सब लोग फिर ज़िन्दा हो गए। उसी समय से यह पूजा प्रारम्भ हुई। बङ्गाल और पूर्वीय भारत में इसका प्रचार है।

गङ्गा सप्तमी

वैशाख शुक्ल सप्तमी को गङ्गा जी की पैदाइश का दिन माना गया है। इसके विषय में ब्रह्मपुराण में कथा है कि इस दिन राजा जन्हु ने क्रोध से गङ्गा जी को पान कर लिया था, फिर दाहिने कान के रन्ध्र से इन्हें निकाल दिया था।

शीतला सप्तमी

श्रावण शुक्लपक्ष में सप्तमी के दिन शीतला देवी के पूजन का दिन है। शीतला देवी के व्रत का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि इनकी सवारी गधे की है, इनके एक हाथ में झाड़ू है और दूसरे हाथ में कलश ; सर इनका सूप से अलंकृत है। इनकी पूजा सौभाग्यवती स्त्रियों के लिए बताई गई है। इसका फल यह बताया गया है कि इससे वैधव्य और दरिद्रता नहीं आती। स्त्री पुत्र-पौत्रादि से परिपूर्ण होती है। इसके सम्बन्ध में भविष्योत्तरपुराण में यह कथा बयान की गई है कि एक राजा की कन्या अपने पति के साथ अपनी ससुराल जा रही थी। रास्ते में उसके पति को सर्प ने डस लिया। कन्या उसी वन में विलाप करने

लगी। इस पर एक वृद्धा स्त्री ने उसके पास आकर उसको शीतला की पूजा करने की सलाह दी और उसने यह भी बताया कि एक मरतबा उसका भी पति साँप के काटने से मर गया था ; किन्तु शीतला के व्रत से उसका वैधव्य जाता रहा। राजकन्या ने उसकी सलाह मान ली और उसका पति जीवित हो गया।

कृष्ण-जन्माष्टमी



भाद्रपद कृष्णाष्टमी को होती है। श्रीकृष्ण जी का जन्म इसी दिन का माना जाता है। कंस को आकाशवाणी द्वारा यह मालूम हुआ था कि उसका भानजा उसकी मृत्यु का कारण होगा। इसलिए जब वसुदेव के साथ उसने अपनी बहिन देवकी की शादी की, उसी समय उसने यह विचार किया था कि देवकी को ही मार डालूँ, किन्तु वसुदेव के समझाने पर वह इस बात पर राज़ी हो गया कि उनके बच्चों को मार डाला करें और देवकी को छोड़ दें। इसी शर्त पर कंस ने देवकी और वसुदेव दोनों को क़ैद कर लिया। उसे जब यह भी मालूम हो गया कि देवकी का आठवाँ बच्चा उसका प्राणनाशक होगा, तो उसे सन्देह हुआ कि आठवें से न जाने कौन सा मतलब हो, ज्येष्ठ से आठवाँ गिना जायगा या कनिष्ठ से, इसलिए उसने सब बच्चों को मारना शुरू किया। जब कृष्ण का जन्म हुआ तब क़ैदख़ाने के सब दरवाज़े खुल गए, सिपाही लोग सो गए और वसुदेव कृष्ण जी को लेकर नन्द जी के यहाँ पहुँचा आए। कृष्ण व्रज में कैसे रहे, कंस को उन्होंने कैसे मारा, महा-

भारत में उन्होंने क्या-क्या किया, इसे अधिकांश हिन्दू जानते हैं। इन्हीं के जन्म के उपलक्ष में कृष्ण-जन्माष्टमी मनाई जाती है।

सत्यविनायक



वैशाख-पूर्णिमा को गणेश जी की पूजा सत्यविनायक के नाम से की जाती है। सत्यविनायक का दूसरा नाम "ओ३म्" है। इनसे ही सारे संसार की उत्पत्ति मालूम होती है। ब्रह्मा ने नारद से इस व्रत के बहुत ज़्यादा माहात्म्य बताए हैं। ब्रह्माण्डपुराण में लिखा है कि दरिद्र सुदामा जब अपनी दरिद्रता से बहुत दुखी हो गए तो उनकी स्त्री ने कहा कि जाकर अपने मित्र कृष्णचन्द्र से कुछ माँग लाओ। नियम के अनुसार मेहमान को अपने साथ कुछ ले जाना चाहिए। सुदामा के घर में तो कुछ था नहीं, उनकी स्त्री पड़ोस से दो-तीन मुट्ठी भुने चावल माँग लाई और उसे लेकर सुदामा द्वारकापुरी को सिधारे। कृष्णचन्द्र ने इनका बहुत आदर-सत्कार के साथ स्वागत किया और इनसे पूछा कि तुम हमारे लिए कुछ लाए भी हो। सुदामा कुछ हिचकिचा ही रहे थे कि कृष्ण जी ने उनके बग़ल से चावल की पोटली छीन ली और भुने चावल खाना शुरू कर दिया। फिर कृष्ण जी ने सुदामा से पूछा कि तुम कैसे रहते हो, बाल-बच्चों का पालन-पोषण कैसे करते हो? सुदामा ने लज्जा के कारण कुछ विशेष

उत्तर न दिया। केवल इतना कहा कि बिना भिक्षा माँगे ही गुज़र होती जाती है। कृष्ण को सुदामा की दरिद्रता तो मालूम ही थी, इसलिए उन्होंने इन्हें सत्यविनायक-व्रत करने को कहा और इसी व्रत के प्रभाव से सुदामा का घर धन-धान्य से परिपूर्ण हो गया। इसी प्रकार की ब्राह्मण-पुराण में मरिम वैश्य और चित्रभानु मन्त्री की भी कथा बयान की गई है, जो इस व्रत के प्रताप से दरिद्र से धनी हो गए हैं, और जिन्होंने इसका अपमान किया है, वह निर्धन और कुष्ठी हो गए हैं।

शिवरात्रि

फाल्गुन कृष्ण-पक्ष की त्रयोदशी को यह व्रत किया जाता है। इस व्रत में उपवास, जागरण और शिवलिङ्ग-पूजन होता है।

इसके माहात्म्य के सम्बन्ध में लिङ्गपुराण में यह कथा कही जाती है कि म्लेच्छदेश में एक मांसाहारी निषाद रहता था। गोह के चमड़े का दस्ताना पहन कर वाणों से वह जानवरों को मारा करता था और यही उसकी जीविका थी। फाल्गुन कृष्ण की चतुर्दशी के दिन वह शिकार खेलने के लिए अपने घर से निकला। दैववशात् वह एक जगह दिन में क़ैद कर लिया गया, किन्तु सायङ्काल को छोड़ दिया गया। दिन भर बिना खाए रहा था, इसलिए साय-ङ्काल को क्षुधा से पीड़ित था। वह अपने घर भी न जा सका, क्योंकि घर पर भी कुछ खाने की सामग्री नहीं थी। इसलिए वह शिकार की तलाश में वन की ओर चला। वहाँ पर उसने एक स्थान देखा, जहाँ एक सुन्दर-सा तालाब था और जहाँ रात्रि के समय मृग पानी पीने के लिए आया करते थे। उसी तालाब के किनारे एक शिव का मन्दिर भी था, जिसके ऊपर बेल का वृक्ष लगा था। इसी

मन्दिर में वेल के पेड़ की आड़ में यह निषाद वैठ गया और मृगों की वाट देखने लगा।

उसे बैठे-बैठे एक पहर रात वीत गई, किन्तु कोई मृग न आया। वह निराश मन सोच ही रहा था कि जवान, सुरूपा, मोटे स्तनों से युक्त, चञ्चल नेत्रों से चारों दिशाओं को देखती, एक मृगी आती हुई दिखाई दी। तव उस व्याध ने उसके मारने की तैयारी की। वेल-पत्र तोड़ कर शिव पर चढ़ाया और उनका ध्यान करके मृगी को मारने के लिए वाण खींचा। मृगी व्याध को यम के समान समझ कर वोली—'हे व्याध! तुम मुझे क्यों मारते हो?' व्याध ने कहा कि मैं और मेरे कुटुम्बी प्रातःकाल से भूखे हैं। भूख से उनकी वुरी हालत है, इसलिए मैं तुम्हें मार कर खाना चाहता हूँ। किन्तु मृगी को मनुष्य की वोली वोलते देख कर उसे आश्चर्य हुआ और उसने पूछा—हे मृगी! तुम कौन हो और मनुष्यों की भाषा कैसे वोल लेती हो? मृगी ने उत्तर दिया कि पूर्व-जन्म में मैं स्वर्ग में इन्द्र की एक सुन्दरी अप्सरा थी, यौवनावस्था में मैंने हिरण्याक्ष महासुर से अपना विवाह कर लिया था। महादेव जी मेरा नाच रोज़ाना देखा करते थे। एक दिन ऐसा हुआ कि हिरण्याक्ष से बातें करते-करते मुझे देर हो गई और मैं समय पर शिव जी के यहाँ नाचने को न पहुँच सकी। इस पर शिव जी ने क्रोधित होकर मुझे शाप दे दिया कि तू

मृगी और हिरण्याक्ष मृग हो। फिर कुछ दयालु होकर शिव जी ने शाप की अवधि बारह वर्ष की कर दी और कहा कि जब तुम दोनों को परस्पर शोक होगा तो तुम्हारे शाप का अन्त होगा। उसी समय से मैं इस वन में घूम रही हूँ। तुम मुझे न मारो, क्योंकि एक तो मेरे पेट में बच्चा है, दूसरे दुख से मांस और चरबी सूख गई है। मैं तुम्हारे खाने के योग्य न हूँगी। हाँ, अभी थोड़ी देर में यहाँ दूसरी मृगी आएगी, उसे तुम मार सकते हो। तुम मुझे जाने दो।

इस पर व्याध ने कहा कि अगर तुम भी चली गई और दूसरी मृगी भी न आई तो क्या होगा? इस पर उसने कहा कि अगर तुम्हें इसका विश्वास नहीं है तो मैं तुमसे प्रतिज्ञा करती हूँ कि मैं तुम्हारे घर पर स्वयं कल प्रातःकाल चली आऊँगी और अगर वह मृगी न आवे तो तुम उस समय मुझे मार सकते हो। मृगी ने क़सम खाई और कहा कि जो पाप ब्राह्मण होकर वेद से भ्रष्ट, सन्ध्या, स्वाध्याय से रहित, सत्य और शौच से विवर्जित, दुष्ट-बुद्धि, धूर्त, ग्राम-कण्टक, निःशील आदि पापियों के होते हैं, वह मुझे हों, यदि मैं कल प्रातःकाल तुम्हारे पास न आ जाऊँ। व्याध ने मृगी को जाने दिया और चुपचाप बैठ रहा। जब एक पहर रात और बीत गई तो उसे सन्त्रास, भय से परेशान, बार-बार पति को ढूँढ़ती हुई एक

दुर्वल मृगी दिखाई दी। तव व्याध ने फिर महादेव पर वेल-पत्र चढ़ा और मन में उनका ध्यान कर, मृगी को मारने के लिए वाण खींचा।

जव मृगी ने व्याध को देखा तो वोली—हे व्याध! तुम मुझे न मारो, मेरा तेज और वल तो विरह की अग्नि में जल चुका है, मुझमें मांस ज़रा भी नहीं रहा है; मुझको मारने से तुम्हारा भोजन नहीं होगा। तुम मुझे छोड़ दो, मेरे जाने के वाद यहाँ एक हृष्ट-पुष्ट मृग आएगा, उसे मारना। उसके मारने से तुम्हारा और तुम्हारे कुटुम्ब का कुछ सन्तोष भी हो सकता है। व्याध ने इस मृगी से भी कहा कि अगर तुम चली गई और मृग न आया तो मैं कहीं का भी न रहूँगा। इस पर मृगी ने क़सम खाई और प्रतिज्ञा की कि मैं सुवह को अवश्यमेव तुम्हारे घर पहुँच जाऊँगी। व्याध ने दूसरी मृगी को भी जाने दिया।

जब सूर्योदय को केवल एक पहर रह गया तो उस समय व्याध ने सम्पूर्ण दिशा और मृगियों के चरण-चिन्ह को ढूँढ़ता हुआ सौभाग्य, वल और दर्प से युक्त एक मदान्ध और मोटा मृग आता हुआ देखा। उसे भी वाण चढ़ाकर मारने को उद्यत हो गया। मृग ने जव निषाद को देखा तो मृत्यु को निश्चित रूप से आई हुई समझ कर कहा कि हे व्याध! तुम्हें अगर मुझे मारना हो तो तुम पहले मेरी बात सुन लो, फिर मारना। व्याध ने पूछा,

क्या कहना चाहते हो ? मृग ने कहा कि हमारे आने के पहले यहाँ दो मृगियाँ आई थीं, वह किधर गईं ? व्याध ने बता दिया कि दो मृगियाँ यहाँ पानी पीने को आई थीं, मैंने उन्हें मारा नहीं, छोड़ दिया। इस पर मृग ने कहा कि यदि उन्हें छोड़ दिया तो तुम मुझे भी छोड़ दो, क्योंकि मेरी स्त्री प्रसूता है और मुझे वहाँ जाना परमावश्यक है। व्याध ने कहा कि तुम भी यदि प्रातःकाल आने की प्रतिज्ञा करो तो मैं तुम्हें भी छोड़ सकता हूँ। मृग ने क़सम खाई और पानी पीकर उसी रास्ते से, जिस रास्ते से मृगियाँ गई थीं, चला गया। व्याध भी अपने घर गया।

जब प्रातःकाल हो गया और भूख ने उस निषाद को बहुत सताया तो वह इधर-उधर देखने लगा। इतने में उसे मृगी आती हुई दिखाई दी। इस मृगी के चारों ओर बच्चे थे। व्याध ने जब इसे मारना चाहा तो मृगी ने रोक दिया और कहा कि बच्चे वाली मृगा को मारना पाप है। अगर तुम्हें मुझे मारना हो है तो मुझे इजाज़त दो, मैं अपने बच्चे घर पर छोड़ आऊँ और फिर तुम मुझे मार डालना। इतने में दूसरी मृगी और मृग भी आ पहुँचे और मृग और मृगियों ने एक दूसरे से अन्तिम भेंट की और मरने को तैयार हो गए। अब प्रश्न यह था कि पहले कौन मरें; मृग या मृगियाँ।

व्याध से यह करुण दृश्य न देखा गया। उनसे उसने

कह दिया कि मैं तुम्हें कदापि न मारूँगा, तुम अपने-अपने स्थान पर जाओ। मैं आज से किसी भी जीव को कष्ट न दूँगा। सत्यधर्म में स्थित हो, मैं आज से शस्त्रों का त्याग करता हूँ। मृग ने कहा कि हम भी अपने वचन से बद्ध हैं और तुम्हारे सामने मरने को आए हैं। जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो। उसी समय स्वर्ग से पुष्प-वर्षा हुई और व्याध और मृगियों को स्वर्ग में ले जाने के लिए विमान आया। मृगराज अपनी तीन स्त्रियों के सहित स्वर्ग को प्राप्त हुआ। दो हिरणी और उसके पीछे मृग, इन तीन ताराओं से युक्त मृगराशि नक्षत्र आज तक पाया जाता है। दो बालक आगे और पीछे और उसके पीछे तीसरी मृगी निकट वर्तमान है। यह नक्षत्रों का राजा अब भी आकाश में पाया जाता है।

६

दीपावली या दिवाली

दिवाली के सम्बन्ध में कई कथाएँ प्रचलित हैं। कुछ लोगों का ख़्याल है कि इस दिन राजा बलि पृथ्वी के साम्राज्य से वञ्चित कर पाताल भेजे गए थे। महाराष्ट्र देश में इस दिन स्त्रियाँ राजा बलि की मूर्तियाँ बनाती हैं। कुछ लोग कहते हैं कि इस दिन विष्णु भगवान् ने नरकासुर नाम के दैत्य को मारा था; अतएव उसी के उपलक्ष में यह त्योहार मनाया जाता है। कुछ लोग इसे लक्ष्मी-पूजा का दिन मानते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि इस दिन महाराज विक्रमादित्य का राज्याभिषेक हुआ था। कुछ लोग कहते हैं कि लङ्का से वापस आने के बाद महाराज श्रीरामचन्द्र जी इसी दिन सिंहासन पर बैठे थे। इस दिन जुआ खेलने के सम्बन्ध में एक पौराणिक कथा यह कही जाती है कि इसी दिन शिवजी ने पार्वती के साथ जुआ खेला था, जिसका नतीजा यह हुआ कि शिवजी के पास जो कुछ था, सब हार गए। इसलिए दुखी होकर कैलाश छोड़ कर, गङ्गा-तट पर निवास करने लगे। कार्तिकेय ने जब देखा कि जुए में सब कुछ हार जाने के कारण महादेव जी (उनके पिता) बड़े दुखी रहते हैं, तो उन्होंने भी पासा फेंकना सीखा और जब अच्छी तरह सीख गए तो अपनी माता के

पास गए। पार्वती जी कार्तिकेय से जुए में सब कुछ हार गईं। कार्तिकेय ने इस तरह से महादेव जी के लिए उनकी हारी हुई जायदाद फिर दिला दी। पार्वती जी को यह बात बुरी लगी और उन्हें बहुत दुख हुआ। जब गणेश जी ने देखा कि जुए में हार जाने के कारण उनकी माता जी दुखी रहती हैं, तो इन्होंने भी पासा फेंकना सीखा और अपने भाई कार्तिकेय को हरा दिया। शिवजी ने फिर गणेश जी से कहा कि पार्वती जी को बुला लाओ, जिससे आपस में सुलह हो जाय। गणेश जी चूहे पर सवार हो गङ्गा जी के किनारे-किनारे जा रहे थे, नारद को पता चल गया। उन्होंने विष्णु से बता दिया कि गणेश जी पार्वती जी को शिवजी से मेल कराने के लिए बुलाने जा रहे हैं। विष्णु ने फ़ौरन ही पासे का रूप धारण कर लिया। शिव, नारद, रावण और पार्वती ने उसी पासे से जुआ खेलना शुरू किया, किन्तु पासा तो विष्णु स्वयं ही थे, बार-बार पार्वती जी के ख़िलाफ़ ढुलक जाते थे। पार्वती जी सब कुछ हार गईं, किन्तु जब बाद को पता चला कि यह विष्णु भगवान् का मज़ाक़ था, तो क्रोधित होकर उन्होंने शाप देना चाहा, किन्तु अन्त में समझाने पर प्रसन्न होकर यह आशीर्वाद दिया कि जो उस दिन, अर्थात् दिवाली के दिन जुआ खेलेगा वह साल भर बराबर समृद्ध और प्रसन्न रहेगा।

दुर्गाषष्ठी



आश्विन शुक्ल-पक्ष छठ के दिन दुर्गा जी ने महादेव जी से कहा कि मुझे लड़का खिलाने और उसे दूध पिलाने की बड़ी इच्छा हो रही है। महादेव जी ने कहा—तुम तो सारी संसार की माता हो, तुम्हें इस प्रकार इच्छा क्यों होती है ? किन्तु दुर्गा ने कहा कि जब तक वास्तव में कोई बच्चा गोद में न हो, तब तक अच्छा नहीं मालूम होता। थोड़ी देर तक वार्तालाप होता रहा, अन्त में यह तय पाया कि कार्तिकेय को बुलाया जाय। शिव जी स्वयं कार्तिकेय को बुलाने गए। किन्तु दुर्गा जी को लड़का खिलाने की इतनी इच्छा थी कि इन्होंने एक गुड्डा बनाया और टकटकी लगा कर उसे देखने लगीं। विष्णु भगवान् को इतने में मज़ाक़ सूझा। फ़ौरन ही इस गुड्डे के शरीर में प्रवेश कर गए और गुड्डा जी गया। जब शिव जी कार्तिकेय को लेकर लौटे तो उन्हें दुर्गा की गोद में दूसरे बच्चे को देख कर आश्चर्य हुआ। दुर्गा ने इस बच्चे की उत्पत्ति का पूरा हाल कह सुनाया। शिव जी बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने सारे देवताओं को इस सुन्दर शिशु के देखने के लिए निमन्त्रित किया। सब देवतागण

जमा हुए। शनि अर्थात् शनीचर देवता भी पधारे, किन्तु इनकी नज़र इतनी ख़राब थी कि ज्योंही इन्होंने इस बालक को ज़रा ग़ौर से देखा कि उसका सिर कट कर ग़ायब हो गया। देव-सभा में हाहाकार मच गया। महादेव जी ने भी गण भेजे कि बच्चे का सर तलाश कर लाओ, किन्तु फिर भी सर नहीं मिला। अन्त में महादेव जी ने कहा कि जो कोई भी जानवर उत्तर की ओर सिर किए सोता हुआ मिले, उसका सिर काट लाओ। हाथी का एक बच्चा ऐसी अवस्था में मिला। उसका सिर गण लोग काट लाए। शिव जी ने इसी सिर को इस शरीर पर रख दिया, और यही गणेश जी के जन्म की भी कथा है। बङ्गाल में यह माना जाता है कि आश्विन शुक्ल की षष्ठी को दुर्गा जी ने गुड्डे को बनाया था।

रक्षा-बन्धन

श्रावण की पूर्णमासी को यह त्योहार मनाया जाता है। "येन बद्धो बलीराजा दानवेन्द्र महाबलः। तेन त्वामपि बन्धनामि रक्षेमाचलमाचल"—इस मन्त्र को पढ़कर रक्षा बाँधी जाती है। इसके सम्बन्ध में भविष्यपुराण में यह कथा कही जाती है कि एक बार देव और असुरों में १२ वर्ष तक बराबर युद्ध होता रहा और जब उसके समाप्त होने की कुछ आशा न हुई तो इन्द्राणी ने इस व्रत को विधिवत् समाप्त करके इन्द्र के हाथ में रक्षा बाँधी, जिसके प्रभाव से इन्द्र ने असुरों पर विजय प्राप्त की थी।

उमा-महेश्वर व्रत



यह व्रत भादों की पूर्णिमा को होता है। इसमें महादेव जी की पूजा की जाती है। इसके सम्बन्ध में मत्स्यपुराण में यह कथा कही जाती है कि किसी समय शिव जी के सर्व-श्रेष्ठ भक्त दुर्वासा ऋषि घूम रहे थे। वहाँ उन्होंने विष्णु को भी घूमते हुए देखा। शङ्कर जी की दी हुई वेल-पत्र की माला इन्होंने विष्णु जी को दिया। विष्णु जी ने इस माला को लेकर गरुड़ के कन्धे पर रख दिया, इस पर दुर्वासा ऋषि को क्रोध आया, उन्होंने विष्णु जी को शाप दिया कि तुमने शिव जी का अपमान किया है, जाओ तुम्हारी लक्ष्मी नाश हो जायगी, क्षीर समुद्र में गिर पड़ेगी और गरुड़ नष्ट हो जायगा। वैकुण्ठ से तुम्हारा अधिकार जाता रहेगा और आज से निस्तेज होकर वन-वन में फिरने लगोगे। इस शाप के सुनते ही विष्णु जी अपने पद से भ्रष्ट हो गए। उनकी लक्ष्मी क्षीर समुद्र में गिर पड़ीं, गरुड़ नष्ट हो गया और वे स्वयं निस्तेज होकर वन में इधर-उधर विचरने लगे। इसी तरह शाप-वश विचरते-विचरते जब विष्णु को वहुत दिन वीत गए तो भाग्यवश एक दिन उन्हें गौतम मुनि मिल गए। विष्णु ने

गौतम मुनि से आँखों में आँसू भर कर अपनी सारी दुर्दशा और उसका कारण कह सुनाया। गौतम मुनि ने उन्हें उमा-महेश्वर व्रत करने की सलाह दी, जिसके करने पर उनका शाप जाता रहा। वह फिर पूर्ववत् लक्ष्मी-सम्पन्न हुए और वैकुण्ठ का उन्हें अधिकार मिल गया।

कालाष्टमी

भैरव या कालभैरव की उत्पत्ति महादेव जी से मानी जाती है। यह बड़े भयङ्कर देवता हैं और रक्त से ही सन्तुष्ट होते हैं। लड़ाई के मैदान में यह बराबर मौजूद रहते हैं। इतने क्रोधी हैं कि इन्होंने क्रोध में आकर ब्रह्मा का पाँचवाँ मुँह अपने अँगूठे के नाख़ून से काट डाला था। पहले ब्रह्मा पञ्चानन थे, अब चतुरानन ही रह गए हैं। कुत्ता भैरव का वाहन है, इनके एक हाथ में त्रिशूल, एक हाथ में रक्त पीने का प्याला, एक में तलवार और एक हाथ में मुरदे का सिर। बनारस इनका ख़ास निवास-स्थान माना जाता है।

इनकी उत्पत्ति की कथा इस प्रकार कही जाती है कि एक समय देवताओं में इस बात की कथा चली कि कौन देवता सर्वश्रेष्ठ है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव और इन्द्र हरेक अपने को सर्वश्रेष्ठ बताते थे। आपस में इस प्रकार बातचीत हो रही थी। ब्रह्मा अपनी श्रेष्ठता पर बहुत ज़ोर दे रहे थे। महादेव जी इसे मानते नहीं थे; बल्कि अपने को सर्वश्रेष्ठ बताते थे। इस पर ब्रह्मा जी को क्रोध आ गया, इन्होंने शिव जी की निन्दा करनी शुरू की। वे कहने लगे—शिव

को तो मैंने बनाया है और जब बना कर तैयार किया तो यह रोने लगा, इसलिए मैंने इसका नाम रुद्र रख दिया; आज यह मेरी बराबरी कर रहा है। इस पर शिव जी को भी गुस्सा आ गया, उन्होंने तुरन्त कालभैरव को पैदा कर दिया। शिव जी की आज्ञा पाकर भैरव ने ब्रह्मा का एक सिर तुरन्त ही काट डाला। फिर शिव जी ने भैरव को बनारस में जाकर रहने की आज्ञा दी। कार्त्तिक शुक्काष्टमी को कालाष्टमी इन्हीं के नाम पर मनाई जाती है।

हनुमान-जयन्ति

चैत्र की पूर्णिमा को हनुमान जी का जन्म माना जाता है। इनकी माता का नाम अञ्जना और पिता का नाम केशरी था। कुछ लोग इन्हें महादेव जी का अवतार मानते हैं। इनके जन्म के सम्बन्ध में यह कथा प्रचलित है कि राजा दशरथ ने पुत्रहीन होने के कारण पुत्रोत्पत्ति के लिए एक यज्ञ किया था। यज्ञ से इन्हें तीन पिण्ड प्राप्त हुए, जिन्हें इन्होंने अपनी रानियों को खाने के लिए दे दिया; किन्तु एक रानी ने उसे बेपरवाही से कहीं ऐसा जगह रख दिया कि उसे चील उठा ले गई और ले जाकर उसे वहाँ गिरा दिया, जहाँ अञ्जना बैठी थी। अञ्जना ने उसे खा लिया और उसी के प्रभाव से हनुमान जी का जन्म हुआ। इनकी कीर्त्ति और यश रामायण आदि ग्रन्थों में काफ़ी तौर से वर्णित है और उनका प्रचार भी हिन्दू-समाज में काफ़ी है; इसलिए उनके बयान करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

रामनवमी

यह त्योहार बहुत ही महत्वपूर्ण माना जाता है। ऐसा कौन भारतवासी होगा, जिसने मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी का नाम तथा उनकी कथा न सुनी हो। प्रायः सभी हिन्दू-धर्मानुयायी उनको ईश्वरीय अवतार मानते तथा पूजा करते हैं। चैत्र मास के शुक्लपक्ष की नवमी को श्रीरामचन्द्र जी का जन्म माना जाता है, इसी से इसका नाम रामनवमी पड़ा। इस दिन सब लोग व्रत रखते और श्रीरामचन्द्र जी का गुण गाते हैं। मन्दिरों में चैत्र की प्रतिपदा से ही राम-कथा प्रारम्भ हो जाती है, और बराबर रामनवमी तक होती रहती है। प्रत्येक जगह राम-जन्मोत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है।

नवरात्र या दुर्गापूजा

आश्विन शुक्ल-पक्ष की प्रतिपदा से यह त्योहार आरम्भ होता है और नौ दिन तक मनाया जाता है। देवी के उपासक इन नौ दिनों तक बराबर व्रत रखते और देवी-माहात्म्य (दुर्गापाठ) का पाठ तथा हवन करते हैं। नवरात्र समाप्त होने के बाद ही दशहरा होता है। नवरात्र के बारे में मार्कण्डेयपुराण में यह कथा लिखी है:—

जब श्रीरामचन्द्र और रावण में युद्ध हो रहा था, उस समय श्रीराम को मालूम हुआ कि रावण में कुछ ऐसी शक्ति है कि जिससे उसका जैसे ही सिर कटता है वैसे ही फिर जीवित हो जाता है। यह देख कर श्रीराम को भी विस्मय हुआ और उन्होंने जाकर देवी से प्रार्थना की। देवी आश्विन शुक्ला प्रतिपदा को आधी रात के समय देवता की प्रार्थना से प्रेरित होकर अपनी निद्रा से जागीं और श्रीराम को रावण के मारने का वर और शक्ति दी। देवतागण देवी के इस महान् अनुग्रह से बहुत कृतकृत्य हुए और उन्होंने यह निश्चित किया कि जब तक रावण की पूरी पराजय न हो जायगी, बहु-व्रत और देवी की पूजा करेंगे। देवताओं ने बहुत श्रद्धा और विधि से देवी की

पूजा की। जब आठवें रोज़ श्रीराम ने रावण को मार लिया, तब देवी ने देवताओं को दर्शन दिया। देवता लोग बहुत प्रसन्न हुए, उनका बहुत आदर-सत्कार किया और नवें दिन बड़ा भारी यज्ञ रचा। इस यज्ञ में देवी के नाम पर उन्होंने अनेक पशुओं का बलिदान और अन्य रीतियों से देवी का सत्कार किया। दसवें दिन श्रीरामचन्द्र रावण पर विजय प्राप्त करके अयोध्या की ओर चले, अतएव दशवाँ दिन विजय-यात्रा के उपलक्ष में दशहरा के नाम से मनाया जाता है। राजे-महाराजे इस दिन अस्त्र-शस्त्रों की पूजा करते हैं और उत्तमोत्तम आभूषणों से अलंकृत होकर निकलते हैं।

देवी की शक्ति की कीर्त्ति और उनके कार्य मार्कण्डेय-पुराण सप्तशती में विस्तृत रूप से वर्णित हैं। संक्षेप में हम उन्हें यहाँ पाठकों के सूचनार्थ लिखे देते हैं :—

सुरथ नाम के एक राजा थे। उनके राज्य में प्रजा बहुत सुखी थी ; किन्तु उनका मन्त्री दुष्ट था। वह उनके दुश्मनों से मिल गया। सुरथ के शत्रुओं ने राजा पर आक्रमण कर दिया, राजा की पराजय हुई। सुरथ शिकार खेलने का बहाना करके जङ्गल में चले गए। उस जङ्गल में इन्होंने एक रम्य स्थान पर एक महात्मा की कुटी देखी। महात्मा ने राजा को आते हुए देख कर उनका यथायोग्य सत्कार किया ; किन्तु राजा का चित्त सिंहासन से भ्रष्ट हो जाने

के कारण विक्षिप्त हो रहा था, यह वहाँ से उठे और जङ्गल के एक कोने में फिर घूमने लगे।

वहाँ उन्हें समाधि नाम का एक बनिया घूमता हुआ मिला। समाधि भी बड़ी परेशानी की हालत में था। राजा ने उसे अपना-सा विक्षिप्त देख कर पूछा—तुम कौन हो? उसने उत्तर दिया कि मैं समाधि नाम का बनिया हूँ। धनी वंश में पैदा हुआ था; किन्तु मेरे पुत्रों और सम्बन्धियों ने धन के लालच से मुझे अपने घर से निकाल दिया है, इससे मैं आज जङ्गल में मारा-मारा फिर रहा हूँ। मुझे अपनी स्त्री का हाल नहीं मिलता कि वह कैसी है और न अपने पुत्रों का ही कुशल-संवाद मिलता है; इस कारण मैं और भी परेशानी में हूँ। मुझे जङ्गल की तकलीफें इतनी असह्य नहीं हो रही हैं, जितना स्त्री-पुत्रों का वियोग। राजा ने कहा कि बड़े आश्चर्य की बात है कि जिन पुत्रों ने और कुटुम्बियों ने तुम्हें घर से निकाल दिया, उनके लिए तुम इतना शोक कर रहे हो। बनिए ने जवाब दिया कि मैं क्या करूँ, मेरा मन नहीं मानता और मैं उनके लिए विह्वल हो रहा हूँ।

ऐसी बात करते-करते राजा और बनिया दोनों ऋषि के आश्रम पर आ गए और ऋषि के सामने प्रणाम करके बैठ गए। राजा ने ऋषि से प्रश्न किया कि महाराज क्या कारण है कि यह वैश्य इस बात को जानते हुए भी कि

इसके पुत्रों ने इसके साथ अन्याय किया है, उनके लिए इस प्रकार विह्वल हो रहा है।

ऋषि ने उत्तर दिया हे राजन्! यह महामाया का प्रभाव है। इस महामाया के प्रभाव से ही यह सारा जगत् चल रहा है। इसी देवी का यह सारा प्रपञ्च रचा हुआ है। राजा ने पूछा—यह देवी, जिसको आप महामाया कहते हैं, कौन हैं और इनका जन्म कैसे हुआ? ऋषि ने कहा कि प्रलय हो जाने के पश्चात् जब सारा संसार जलमय हो गया; किन्तु भगवान् के नाभी से कमल और कमल से ब्रह्मा जी की उत्पत्ति हो चुकी, उस समय विष्णु भगवान् शेषनाग की शय्या बिछा कर योग-निद्रा में सो गए। विष्णु भगवान् को योग-निद्रा में सोते-सोते हज़ारों वर्ष बीत गए कि उनके कान के मल से मधु और कैटभ नाम के दो दैत्य पैदा हुए। मधु और कैटभ की भयङ्कर सूरत और उनका उग्र बल देखकर ब्रह्मा जी को बहुत परेशानी हुई और उन्होंने विष्णु को जगाने के लिए उनकी माया की प्रार्थना करनी शुरू की। विष्णु जाग पड़े और इन दैत्यों से पाँच हज़ार बरस तक लड़ते रहे; किन्तु इन्हें न मार पाए। तब महामाया ने इन असुरों पर अपना मोहन मन्त्र डाल दिया, जिससे प्रेरित होकर इन्होंने अभिमान में आकर विष्णु से कहा कि तुम हम दोनों से जो वर माँगना हो, माँगो! विष्णु ने कहा कि मैं यह वर

माँगता हूँ कि तुम्हें मार डालूँ और तुम दोनों मर जाओ। असुरों ने कहा—अच्छा, तुम हमें वहाँ मार डालो जहाँ पानी न हो। विष्णु ने इस पर उन्हें जल से उठा लिया और मार डाला। यह माया का प्रथम अवतार था। इसे महाकाली का अवतार कहते हैं। महाकाली के दश सिर और दश पैर बताए जाते हैं। इनका रङ्ग बिलकुल काला बताया जाता है।

दूसरा अवतार महालक्ष्मी का माना जाता है। यह अवतार महिषासुर के मारने के लिए हुआ था। महिषासुर ने अपनी वीरता और पराक्रम से सारा संसार जीत लिया था। देवताओं को स्वर्गलोक से निकाल दिया और वह लोग मृत्युलोक में साधारण आदमियों के समान फिरने लगे थे। तमाम देवताओं ने जाकर विष्णु और महादेव जी से सब स्थिति वर्णन की। देवताओं की दुर्दशा सुन कर विष्णु और महादेव जी दोनों को ही बड़ा क्रोध आया और इनके शरीर से तेज निकल पड़ा। जितने देवता थे, उनके शरीर से कुछ न कुछ तेज निकला और सब इकट्ठा होकर एक स्त्री का रूप धारण कर लिया। इस तेज से एक सिंह की भी उत्पत्ति हुई। तेजों से उत्पन्न इस स्त्री को देवताओं ने अपने-अपने अमोघ अस्त्र प्रदान किए। महालक्ष्मी इस प्रकार से अस्त्र-शस्त्र से समालंकृत हो, सिंह पर चढ़ कर महिषासुर को मारने के लिए रवाना

हुईं। ख़ूब घमासान युद्ध करके उन्होंने महिषासुर का वध कर दिया।

तीसरा अवतार महा सरस्वती का है। शम्भु और निशम्भु नाम के दो दैत्यों ने देवताओं को जीत लिया। इन्द्र को स्वर्गलोक से निकाल दिया और अन्य देवताओं को भी उनके स्थान से गिरा दिया। देवता लोग इससे दुखी हो, हिमाचल पर्वत पर जाकर देवी की स्तुति करने लगे। पार्वती जी इतने में गङ्गा-स्नान के लिए आईं और स्तुति के प्रभाव से उनके शरीर से एक सुन्दर स्त्री पैदा हो गई, यही महा सरस्वती थीं और इन्हीं से इन दैत्यों का वध होना था। जब महा सरस्वती इन दैत्यों के निकट गईं, तो दैत्य लोग इन्हें देख कर बड़े मोहित हो गए। इन्होंने चाहा कि इस स्त्री के साथ विवाह कर लें, इसलिए इन्होंने सुग्रीव नाम के एक दैत्य को इस स्त्री के पास विवाह की बात लेकर भेजा। सुग्रीव असफल वापस गया। इस पर शम्भु ने धूम्रलोचन सेनापति के अधिकार में एक प्रबल सेना इस शक्ति को पकड़ने के लिए भेजी। इस देवी ने दैत्यों की सेना का सत्यानाश कर दिया।

इसके बाद चण्ड-मुण्ड दो राक्षस अनन्त सेना लेकर इस देवी को पकड़ने के लिए आए। उन्होंने देवी पर आक्रमण किया। उनके आक्रमण को देख कर यह देवी इतनी क्रुद्ध हुई कि इनका चेहरा काला हो गया और

इनके शिर से काली का जन्म हुआ। काली के गले में मुण्ड की माला थी और शरीर पर सिंह का चर्म था। इनकी आँखें लाल थीं और जिह्वा बाहर लपलपा रही थी। काली ने दैत्यों की सेना को खाना शुरू कर दिया और जब हज़ारों का नाश कर चुकीं, तो चण्ड सामने आया। काली ने चण्ड और मुण्ड दोनों को मार डाला और उनका सिर लेकर महा सरस्वती के पास गईं। महा सरस्वती ने इस कार्य के लिए काली को चमण्डु की उपाधि दी।

चण्ड और मुण्ड के मरने के बाद शम्भु और निशम्भु खुद लड़ने के लिए आगे आए। इस समय देवी के शरीर से दूसरी शक्ति पैदा हुई, जिसका नाम चण्डिका था। चण्डिका ने दैत्यों से कहा—तुम लोग पाताल-लोक में जाकर रहो; किन्तु इन्होंने नहीं माना। लड़ाई हुई और दैत्य लोग मारे गए। जो कुछ बचे सो भाग गए; किन्तु रक्तवीज रह गया। रक्तवीज में यह गुण था कि अगर उसका एक बूंद भी रक्त ज़मीन पर गिरता था, तो उससे रक्तवाज के समान ही शक्ति वाला दूसरा दैत्य तैयार हो जाता था, इसलिए जब रक्तवीज का सिर काटा गया तो जितने बूँद ख़ून के ज़मीन पर गिरे उतने ही रक्तवीज तैयार हो गए। इसलिए महा सरस्वती ने यह निश्चय किया कि काली रक्तवीज का ख़ून एक बूँद भी ज़मीन पर

न गिरने दे। ज्योंही उसके शरीर से ख़ून की धारा निकले, त्योंही काली उसे पी जाय। काली देवी इस पर तैयार हो गई और इस तरह से रक्तबीज मारा गया। शम्भु और निशम्भु दोनों मार डाले गए। देवी ने तीसरा अवतार धारण करके इस प्रकार देवताओं को स्वर्ग का राज्य दिलाया।

चौथा अवतार नन्द के गृह में हुआ था। इस कन्या का नाम नन्दा था और इसे कृष्ण के बदले वसुदेव ने कंस को दिया था; किन्तु जब कंस ने इसे पत्थर पर पटक कर मारना चाहा, तो यह उसके हाथ से छूट कर आकाश में चली गई और वहाँ से कहा कि हे कंस, तुम्हारा घातक पैदा हो गया है।

पाँचवाँ अवतार रक्तदन्ती का है, इसमें देवी ने एक दैत्य को दाँतों से दबोच कर मार डाला है। छठा अवतार शाखाम्बरी का है, जिसमें देवी ने सौ वर्ष से अकाल-पीड़ित प्रजा की रक्षा की थी। सातवें अवतार में दुर्गम राक्षस को मारा है, जिससे दुर्गा कहलाईं। आठवाँ अवतार मातङ्गी और नवाँ भ्रमराम्बरी का है। इसमें देवी ने अरुण राक्षस को मारा था।

अनङ्ग

अनङ्ग अर्थात् कामदेव ब्रह्मा के पुत्र कहे जाते हैं। पैदा होते ही इन्हें यह वर मिला था कि तीनों लोक के सुर और असुरों के हृदय पर इनका वश रहेगा। विष्णु और शिव के हृदय भी इनके प्रभाव-क्षेत्र में थे। वरदान पाते ही अनङ्ग ने पहले अपने पिता पर ही अपना बाण चला दिया और अपनी सफलता से प्रसन्न होकर इसने एक बार समाधिस्त शिव पर भी अपना बाण चलाना चाहा; किन्तु महादेव जी को क्रोध आ गया और इन्होंने अपने तीसरे नेत्र से कामदेव को भस्म कर डाला। रति कामदेव की स्त्री थी। महादेव जी के तीसरे नेत्र की ज्वाला से अपने पति के भस्म होकर अङ्गहीन हो जाने से रति को बड़ा दुख हुआ और इसने महादेव जी से बहुत प्रार्थना की। तब महादेव जी ने प्रसन्न होकर उससे कहा कि तुम्हारे पति का फिर जन्म होगा।

दूसरा जन्म कामदेव का रुक्मिणी के गर्भ से हुआ; किन्तु छठी के दिन शम्बर नाम का दैत्य इसे उठा ले गया। शम्बर ने इस बालक को समुद्र में फेंक दिया। समुद्र में इसे एक मछली निगल गई। जब यह मछली

पकड़ी गई; तो शम्बर के यहाँ ही आई। मछली का पेट चाक करने पर उसके अन्दर से बच्चा निकला। शम्बर ने यह नहीं पहचाना कि यह वही बालक है, जिसे मैं रुक्मिणी के यहाँ से चुरा लाया था, इसलिए उसने अपनी कन्या मायावती को दे दिया। मायावती स्वयं रति थी। जब महादेव जी ने इसे प्रसन्न होकर यह बताया था कि तुम्हारा पति तुम्हें फिर मिलेगा और वह कृष्ण के घर में जन्म लेगा। उसी की प्रतीक्षा में रति ने मायावती का रूप धारण कर लिया था। मायावती ने बालक के लक्षणों से फ़ौरन पहचान लिया कि यह कामदेव है। इसलिए उसने अच्छी तरह से पालन-पोषण किया और जब यह बड़ा हुआ, तो मायावती ने इससे इसके जन्म का पूरा हाल बता दिया कि कैसे शम्बर तुम्हें तुम्हारी माता के यहाँ से हर लाया और कैसे समुद्र में गिरा दिया, इत्यादि। बालक ने, जिसका नाम प्रद्युम्न था, शम्बर की इस निर्दयता को सुन कर उसे मार डाला। चूँकि यह मछली से पैदा हुए थे, इसलिए इनकी ध्वजा में मछली का निशान है। तोते के ऊपर इनकी सवारी है और हाथ में फूल का धनुष-बाण है।

कोकिला व्रत

यह व्रत आषाढ़ पूर्णमासी को किया जाता है। जिस साल मलमास पड़ता है, उस साल शुद्धाषाढ़ की पूर्णिमा को होता है। यह व्रत स्त्रियों का ही है और इसकी विधि यह है कि आषाढ़ महीने की पूर्णिमा के सायङ्काल से प्रत्येक सौभाग्यवती स्त्री को यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि मैं एक महीने तक बराबर प्रतिदिन स्नान करूँगी, ब्रह्मचारिणी रहूँगी, केवल सायङ्काल को ही भोजन करूँगी, ज़मीन पर सोऊँगी और प्राणियों पर दया करूँगी। यह भी कहा गया है कि प्रतिदिन प्रातःकाल इस व्रत को करने वाली स्त्री दतून करने के पश्चात् नदी, तालाब या किसी कुएँ पर जाकर स्नान करे, सुगन्धित आमले का तेल लगावे। आठ रोज़ ऐसा करने के बाद फिर वच का उबटन लगावे और सूर्य देवता की पूजा किया करे। इसका फल यह कहा गया है कि स्त्री कभी विधवा नहीं होती।

इसके सम्बन्ध में यह कथा कही जाती है कि एक समय दक्ष ने अपने यहाँ यज्ञ किया और उस यज्ञ में सब देवताओं को निमन्त्रित किया; किन्तु महादेव जी को नहीं

बुलाया। महादेव जी कैलास पर्वत पर अपनी तपस्या में मग्न थे और उनको पता भी नहीं था कि दक्ष ने कोई यज्ञ किया है। नारद जी दक्ष के यज्ञ में गए हुए थे, उन्होंने जब दक्ष के यहाँ महादेव जी को अनिमन्त्रित देखा, तो उन्हें बुरा मालूम हुआ। वे यज्ञशाला से उठ आए और महादेव जी के पास जाकर सब हाल कह सुनाया। महादेव जी ने जब अपने अपमान की यह कथा सुनी, तो उन्हें क्रोध आया। उन्होंने दक्ष को इस अपमान के लिए दण्ड देने का विचार किया; किन्तु पार्वती जी ने कहा कि तुम कुछ न करो, मैं स्वयं जाकर अपने पिता को उनके इस अनुचित कार्य के लिए दण्ड दूँगी।

यह कह कर गणेश जी को लेकर पार्वती जी और नारद जी दक्ष की यज्ञशाला के लिए रवाना हुए। जब पार्वती जी दक्ष के यहाँ पहुँचीं, तो उनको किसी ने भी न पूछा। वह दरवाज़े पर खड़ी रहीं और किसी ने उनको नहीं बुलाया। इस पर पार्वती जी को बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने विचार किया कि अब मेरे जीने से क्या फ़ायदा? यह विचार कर वह हाहाकार करके यज्ञाग्नि में कूद पड़ीं। गणेश जी ने माता की यह दशा देख कर दक्ष और वहाँ एकत्रित अन्य देवताओं को मारना शुरू कर दिया। नारद जी ने जब यह देखा कि दक्ष का यज्ञ भङ्ग हो गया और गणेश जी के साथ सारे देवता लड़ाई कर रहे हैं,

तो वह फ़ौरन ही फिर शिवजी के पास पहुँचे और उनसे सब हाल कह सुनाया। महादेव जी इस बात पर बहुत क्रुद्ध हुए और उन्होंने अपनी जटा फटकारी। इस जटा से वीरभद्र नाम का लाल-लाल आँख वाला अति विकट पुरुष पैदा हुआ और महादेव जी से पूछा कि जो आज्ञा हो, बताइए। महादेव जी ने आज्ञा दी कि जाओ दक्ष के यज्ञ में जितने देवता हों, उनको मार डालो और दक्ष का भी सिर काट लो। वीरभद्र ने यज्ञशाला में आकर देवताओं से युद्ध आरम्भ कर दिया और थोड़ी ही देर में उसने अनेक देवताओं को मार डाला, अनेकों को घायल किया और जो बचे, उन्हें भगा दिया। दक्ष का सिर काट कर शीघ्र ही महादेव जी की जटा में जाकर प्रवेश कर गया। महादेव जी को थोड़ी देर के बाद जब तसल्ली हुई और उनका क्रोध ठण्ढा हुआ, तो ब्रह्मा और विष्णु ने आकर उनसे प्रार्थना की कि देवताओं के मरने से बड़ी हानि हुई है, आप इन पर कृपा करिए—जो मरे हैं, उन्हें जिला दीजिए; जिनके अङ्ग कटे हैं, उन्हें पूर्णाङ्ग कर दीजिए।

महादेव जी फिर प्रसन्न हो गए, उन्होंने सब को जिला दिया और जिनके हाथ-पैर टूटे थे, उन्हें पूर्णाङ्ग कर दिया; किन्तु यज्ञ-विघ्नकारिणी पार्वती को नहीं जिलाया। उन्हें यह शाप दिया कि जाओ, पक्षियोनि को प्राप्त होकर कोकिला हो। पार्वती जी इसलिए नन्दन-वन में दस हज़ार

वर्ष तक कोकिला-रूप धारण करके विचरने लगीं और फिर इस मनुष्य-जन्म को पाकर महादेव जी की अर्द्धाङ्गिनी बनीं। उसी समय से आषाढ़ मास के उत्तम मलमास (अधिक मास) में यह व्रत माना जाता है।

होली

फाल्गुन की पूर्णिमा को यह त्योहार मनाया जाता है। भविष्योत्तर पुराण में इसे फाल्गुन पूर्णमोत्सव कहा गया है। इसकी उत्पत्ति का कारण इसी पुराण में इस तरह बयान किया गया है कि सतयुग में पृथु नाम का एक राजा था। यह राजा बहुत प्रतापी और यशस्वी था। प्रजा को अपने पुत्रों के समान पालता था। इसके राज्य में न कभी दुर्भिक्ष पड़ता था, न कोई बीमारी आती थी और न कोई अकाल-मृत्यु होती थी; किन्तु एक दिन ऐसा हुआ कि तमाम प्रजा पृथु राजा के द्वार पर इकट्ठी होकर त्राहि-त्राहि पुकारने लगी। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ कि आख़िर यह एकदम से प्रजा पर कौन सी आफ़त आ गई।

राजा को पूछने पर मालूम हुआ कि उसके राज्य में ठौंठा नाम की राक्षसी आती है और रात के समय या दिन को किसी वक़्त बच्चों पर आक्रमण करती है, जिससे वे बीमार पड़ जाते हैं या मर जाते हैं। राजा को ठौंठा राक्षसी की यह कथा सुन कर बड़ा विस्मय हुआ और इन्होंने अपने पुरोहित वशिष्ठ जी से पूछा कि यह ठौंठा

कौन है और उसके मारने के क्या उपाय हो सकते हैं ? वशिष्ठ जी ने ठौंठा का पूरा इतिहास राजा पृथु से कह सुनाया। उन्होंने कहा कि यह ठौंठा राक्षसी मालिन राक्षस की लड़की है। उसने एक समय महादेव जी को प्रसन्न करने के लिए बहुत उग्र तप किया। महादेव जी ठौंठा के तप से बहुत प्रसन्न हुए और उससे बोले कि तुझे जो कुछ वर माँगना हो, माँग! ठौंठा ने कहा कि आप मुझे यह वर दीजिए कि मुझे न तो कोई सुर-असुर, न मनुष्य और न शस्त्र मार सके। महादेव जी ने 'एवमस्तु' कह दिया; किन्तु अन्त में यह भी कहा कि उन्मत्त बालकों से तुम्हें भय अवश्य रहेगा। इसलिए महादेव जी के इन वचनों को याद करके ठौंठा राक्षसी हमेशा बच्चों को पीड़ा पहुँचाया करती है।

वशिष्ठ जी ने इसके बाद राजा पृथु को इस राक्षसी को निवारण करने का उपाय बताया। उन्होंने कहा कि फाल्गुन की पूर्णिमा को आप बहुत बड़ा उत्सव मनाइए। सब लोगों को अभयदान दे दीजिए—सब लोगों को यह अधिकार दे दीजिए कि जो उनके दिल में आए, वह कर सकते हैं। बच्चे लोग प्रसन्न-चित्त होकर खूब चिल्लाते हुए समरोत्सुक वीर के समान एक स्थान पर लकड़ी, कण्डा इत्यादि इकट्ठा करके जलावें, तालियाँ बजावें, इस अग्नि की तीन बार परिक्रमा करें, गावें और हँसें। इन शब्दों

को सुन कर ढौंठा राक्षसी भाग जायगी और नज़दीक न आएगी। रात्रि के समय बच्चों की रक्षा करने का, उनके उबटन लगा कर उनको स्वच्छ करने का भी इस उत्सव में आदेश दिया गया है। भविष्योत्तरपुराण के अनुसार होली का उत्सव उसी समय से चला है और इसे ढूँडेरी भी इसी कारण से कहते हैं।

इसकी उत्पत्ति का दूसरा कारण होलिका और प्रह्लाद की कथा कही जाती है। हिरण्यकश्यप राक्षस नास्तिक था; वह विष्णु की भक्ति में विश्वास नहीं करता था, उसके विपरीत उसका पुत्र प्रह्लाद विष्णु का अनन्य भक्त था। अपने पुत्र की भक्ति और श्रद्धा की परीक्षा करने के लिए हिरण्यकश्यप ने अपने पुत्र पर अनेक अत्याचार किए। कभी तो उसे कुम्हार के आवे में रख कर जलवाया, कभी पहाड़ पर से गिराया; किन्तु हर एक कठिनाइयों में प्रह्लाद की भक्ति अटल रही और विष्णु भगवान् ने उसे तमाम कष्टों से निवारण किया। जब हिरण्यकश्यप प्रह्लाद की आस्तिकता से बहुत परेशान हुआ तो उसने अपनी बहिन होलिका को यह आज्ञा दी कि प्रह्लाद को लेकर अग्नि में बैठ जाओ, जिससे प्रह्लाद जल कर मर जाय। होलिका ने ऐसा ही किया; किन्तु अपने विश्वास और भक्ति के कारण प्रह्लाद तो अग्नि से भी बच गया और बेचारी होलिका जल कर भस्म हो गई। उसी समय से

कुछ लोगों के मतानुसार होलिका-दहन का उत्सव आरम्भ हुआ है। यह उत्सव एक प्रकार से विष्णु-भक्ति की विजय की ख़ुशी मनाने के लिए और विष्णु के विरोधियों की निन्दा करने के लिए किया जाता है।

पाठकों को यह तो मालूम ही होगा कि इस उत्सव पर घृणित गालियाँ बहुत बकी जाती हैं। भविष्योत्तरपुराण के अनुसार तो ये गालियाँ वशिष्ठ जी के इस आदेश के अनुसार कि "लोगों के मन में जो कछ आवे, कहें" दी जाती हैं, जिससे ढौंढा राक्षसी भाग जाय। और दूसरी कथा के अनुसार होलिका को और उसकी जाति के व्यक्तियों को इस लिए गाली दी जाती है कि उसने प्रह्लाद-ऐसे सत्याग्रही भक्त को ज़िन्दा ही भस्म करने का प्रयत्न किया था। किन्तु गालियों की मात्रा कई प्रान्तों में इस हद तक बढ़ी है और विशेष कर गाँवों में पुरानी चाल के आदमियों में इतनी ज़्यादा पाई जाती है कि मेरा विचार यह होता है कि मैं होलिका-दहन-उत्सव के वर्णन के साथ ही साथ और देशों में गालियों और अश्लील बातों से परिपूर्ण दो-एक त्योहारों का वर्णन करके यह दिखाऊँ कि ऐसे त्योहार किस श्रेणी के राष्ट्र में और किस अवस्था में पाए जाते हैं।

अश्लील गान और अश्लील बातें बकने की प्रथा भारतवर्ष के लिए ही नई नहीं है। जहाँ असभ्यता और नीचता का प्राबल्य रहता है, वहाँ इस प्रकार की बातें

होती हैं। आज भी जो क़ौमें असभ्य हैं, इस प्रकार के त्योहार मनाती हैं। आज कल जो राष्ट्र सभ्य हो गए हैं उन्होंने भी अपनी असभ्यता की अवस्था में इस प्रकार के त्योहार मनाए हैं। मैं उदाहरण के लिए अङ्गरेज़ और फ्रान्सीसी जाति के उस त्योहार का वर्णन करूँगा, जो बिलकुल होली से मिलता-जुलता है।

इङ्गलैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी और बेलजियम देशों में छः जनवरी को एक त्योहार मनाया जाता था; जिसे 'मूर्खों का त्योहार' कहते थे। इस त्योहार में लोग हर एक गाँव में इकट्ठे होकर अपना एक प्रमुख चुनते थे। उसे "दाल का राजा" (King of the Beans) कहते थे। यह राजा अपनी एक रानी स्वयं चुनता था, वह "दाल की रानी" (Queen of the Beans) कहलाती थी। निर्वाचन का काम समाप्त होने के बाद सब लोग इस राजा और रानी को प्रणाम करते थे और वह कुटुम्ब भर को आशीर्वाद देते थे। इसके बाद गाँव भर के या कुटुम्ब भर के सब आदमी इकट्ठे होकर शराब पीना शुरू करते थे, और बैठे-बैठे बराबर घण्टों तक शराब पीते रहते थे। जब-जब राजा या रानी शराब पीते थे, तब-तब सब ज़ोर से चिल्लाते थे—"राजा पी रहे हैं", "रानी पी रही हैं।" अगर कोई आदमी समय पर चिल्लाने में चूक गया या पिछड़ गया, तो उसका मुँह काला कर दिया जाता था या उसके सिर

पर सींग लगा कर गधे का स्वरूप बनाया जाता था। जब तक यह त्योहार समाप्त नहीं होता था, तब तक उसको इसी अवस्था में रहना पड़ता था। इसके एक दिन के पहले अर्थात् ५ जनवरी को चौराहे पर अन्न-दाह किया जाता था। तीसरे पहर जवान लड़के और लड़कियाँ गाड़ियों में बैठ कर निकलते थे और ईंधन इकट्ठा कर लाते थे और शाम को इस इकट्ठे किए हुए ईंधन में अग्नि लगा दी जाती थी। लोग इसके चारों ओर नाचते थे। इङ्गलैण्ड के लोगों का विचार था कि इस अग्नि-दाह से फ़सल बहुत अच्छी होती है और साथ ही साथ इसके प्रभाव से भूत-प्रेत का भय बिलकुल नष्ट हो जाता है।

दिसम्बर के अन्त में, अर्थात् इस त्योहार के ठीक पहले इङ्गलैण्ड तथा स्कॉटलैण्ड आदि देशों में एक त्योहार और मनाया जाता था, जिसमें "एक कुशासन राजा" (King of Mis-Rule) निर्वाचित होता था, इसे "दुर्बुद्धि पादरी" (Abbot of Unreason) भी कहते थे। राजा के दरबार में, नवाबों की हवेलियों में, धनियों की कोठी में और गरीबों के घर में—सभी जगह यह व्यक्ति निर्वाचित होता था।

अक्सर यह त्योहार तीन महीने तक बराबर जारी रहता था। फ्रान्स में Lord of Mis-Rule को Festival of Fools कहते थे। यह कहीं २६ दिसम्बर को

मनाया जाता था और कहीं पहली जनवरी को। इसके मनाने का तरीक़ा यह था—बड़े दिन के रोज़ शाम को जितने पादरी होते थे—सब गिरजाघर में इकट्ठे होकर एक-दम से चिल्लाते थे—"बड़ा दिन" और फिर मस्त हो जाते थे। औरतें मर्दों का रूप धारण करती थीं और मर्द औरतों का, फिर एक दूसरे से लिपट कर नाचते-गाते थे। शराब पीते और चिल्लाते थे। गन्दे से गन्दे गाने गाए जाते थे। गन्दे से गन्दे और अश्लील से अश्लील दृश्य दिखाए जाते थे। साधारण मनुष्य तो आपे से बाहर भी रहता था। पादरी लोग और समझदार आदमी अपना-अपना रूप बदल कर औरत मर्द और मर्द औरत बन कर चेहरों पर नक़ाब डाल कर इकट्ठे होते थे। गिरजाघर, जहाँ परमेश्वर का नाम लेना चाहिए, शराबख़ाना बन जाता था। यहीं ताश और जुआ खेलते थे। जूतों को आग में जलाते थे, जिससे असह्य दुर्गन्ध उठती थी। सब लोग मिल कर जो, जिसको पाता था, लिपटा कर नाचता था, चूमता था और गन्दी से गन्दी गालियों के गीत गाता था।

इसके बाद ये सब लोग गाड़ी पर सवार होकर शहर या गाँव की सड़क पर निकलते थे और जनता को देख कर, जो इकट्ठा रहती थी, गालियाँ बकने लगते थे और जनता इन्हें गालियाँ देती थी। इस तरह से यह त्योहार

समाप्त होता था। यह हाल इङ्गलैण्ड और अन्य पश्चिमीय देशों का अठारहवीं सदी के पहले का है। मैं इस वर्णन को वहुत विस्तार नहीं देना चाहता और न हर एक चीज़ को तफ़सीलवार और स्पष्ट वयान करने में ही मुझे वहुत शिष्टता मालूम होती है; किन्तु मैं पाठकों को यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि यूरोप में ही नहीं, सारे संसार के हर एक समाज में असभ्यता के ज़माने से इस प्रकार की घृणित कुप्रथाएँ पाई जाती थीं। Salurnatia, Luperealia: Festum Stultorum, Matrolania Festa; Liberaha इत्यादि त्योहार, जो पश्चिमीय देशों में एक न एक समय पर मनाए जाते थे, होली के समान ही अश्लीलता पूर्ण थे।

मिश्र देश के इतिहास में लिखा है कि यहाँ के लोग होली के त्योहार पर नावों में वैठ कर हज़ारों की तादाद में एक मन्दिर में देवता के दर्शन के लिए जाया करते थे। रास्ते में स्त्रियाँ और पुरुष गाते थे। जहाँ कहीं रास्ते में कोई गाँव या क़स्वा पड़ता था, वहाँ ये लोग उतर पड़ते थे, कुछ औरतें गाने लगती थीं, कुछ उस गाँव के मर्दों और औरतों के देखते ही उन्हें गालियाँ सुनाने लगती थीं और कुछ स्त्रियाँ नङ्गी होकर उनके सामने खड़ी हो जाया करती थीं।

हमारे देश में भी होली के त्योहार पर जो अश्लीलता

पाई जाती है, वह अन्य देशों से कम नहीं है। भेद सिर्फ़ इतना ही है कि यह अश्लीलता अन्य राष्ट्र अपनी असभ्यता के ज़माने में रक्खा करते थे; किन्तु हम सभ्य ही नहीं, ऋषि-सन्तान होने का दावा करते हुए भी इस अश्लीलता को बरतते हैं। होली का त्योहार एक प्रकार का स्त्रीत्व के अपमान करने का एक साधन हो रहा है। पतित लोग इस त्योहार से फ़ायदा उठाते हैं। समझदार लोग भी परम्परा के फन्दे में फँस कर इसमें सहयोग देते और समर्थन करते हैं। निस्सन्देह यह बहुत दुख की बात है। जब तक हमारे कर्म और आचार-व्यवहार असभ्यों और पिशाचों के समान हैं, तब तक अपने मुँह से हम ऋषि-सन्तान ही नहीं, साक्षात् ब्रह्म ही होने का दावा क्यों न करें; पर संसार की नज़रों में—और वास्तव में हम वही रहेंगे जो हैं अर्थात् असभ्य और पतित!

अनन्त चतुर्दशी



यह व्रत भादों के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को होता है। इस व्रत में अनन्तदेव की पूजा की जाती है। इसके सम्बन्ध में यह कथा कही जाती है कि जिस समय युधिष्ठिर जुए में राज-पाट हार कर वनवास भेज दिए गए और वे अपने भाइयों और द्रौपदी के साथ वन में रहने लगे, तो उनके वनवास हो जाने की कथा सुन कर श्रीकृष्ण जी उनसे मिलने के लिए वन में गए। श्रीकृष्ण को देख कर युधिष्ठिर को शान्ति हुई और उन्होंने उन से पूछा कि मैं इस दुख से कैसे मुक्त होऊँ? श्रीकृष्ण ने उन्हें इसी व्रत के रखने की सलाह दी। इस पर युधिष्ठिर ने पूछा कि अनन्तदेव किस देवता का नाम है और इसका क्या महात्म है? इस पर श्रीकृष्ण ने यह वर्णन किया कि अनन्त मेरा नाम है और इस दिन मेरी पूजा होती है। इसके सम्बन्ध में कृष्ण जी ने युधिष्ठिर को यह कथा सुनाई—

पहले सतयुग में सुमन्त नाम का ब्राह्मण था। उसकी स्त्री का नाम दीक्षा था। इनके शीला नाम की कन्या पैदा हुई। जब शीला कुछ बड़ी हुई, तो माता का देहान्त

हो गया और सुमन्त ने कर्कशा नाम की स्त्री से अपना दूसरा विवाह कर लिया। शीला थोड़े दिनों में विवाह करने योग्य हुई। सुमन्त ने इसका विवाह कौण्डिन्य नाम के ब्राह्मण से कर दिया। दायज के समय सुमन्त ने कर्कशा से कहा कि दामाद घर में आया है, उसको कुछ दायज देना चाहिए। कर्कशा इस पर बड़ी क्रोधित हुई। मकान की दीवारें फोड़ डालीं और बहुत साधारण भोजन—ईंट और पत्थर बाँध दिए और कहा कि दामाद को दे आओ।

कौण्डिन्य ये बातें सुन कर बहुत दुखी हो, विदा होकर चला आया। घर जाते समय मार्ग में उसे यमुना जी मिलीं। शीला ने दोपहर के समय लाल वस्त्र पहने हुए बहुत सी स्त्रियों को यमुना में स्नान और पूजा करते हुए देखा। वह गाड़ी से उतर कर इनके पास गई और पूछा कि यह कौन सी पूजा है? स्त्रियों ने बतलाया कि यह अनन्त-व्रत है और हम लोग अनन्त भगवान् की पूजा करती हैं। शीला ने भी यही पूजन किया और विधि के अनुसार एक डोरे में चौदह गाँठें बाँध, केसर में रँग और उसका पूजन कर अपने हाथ में बाँध लिया, फिर गाड़ी में बैठ कर अपने घर आई। उसी क्षण उस अनन्त-व्रत के कारण उसका घर गौ और धन-धान्य से परिपूर्ण हो गया और कौण्डिन्य, शीला आदि सपरिवार आनन्द से रहने लगे।

एक दिन कौण्डिन्य ने शीला के हाथ में अनन्त-व्रत में पूजन किए डोरे को देखा। उसने समझा कि शीला ने मुझे वश में रखने के लिए यह कोई यन्त्र बाँध रक्खा है। उसने उसे छीन कर आग में डाल दिया। शीला हाहाकार करके उठी और आग से उस डोरे को निकाल, दूध में भिगोकर फिर बाँध लिया। इस कर्म से कौण्डिन्य की धीरे-धीरे सारी सम्पदा नष्ट होने लगी, चोर लोग माल-असवाव उठा ले गए। घर में दरिद्रता आ गई। रिश्तेदारों ने साथ छोड़ दिया। कौण्डिन्य जब बहुत दुखी हुआ, तो उसने शीला से कहा कि मैं अब ज़िन्दगी से आजिज़ आ गया हूँ। कुछ समझ में नहीं आता कि क्या करूँ? शीला ने कहा कि तुमने अनन्त भगवान् का उस दिन निरादर किया था, उसी का परिणाम तुम्हें मिला है। अनन्त भगवान् को यदि प्रसन्न करो, तो तुम्हें सब कुछ फिर मिल सकता है।

कौण्डिन्य घर से अनन्त भगवान् की तलाश में निकल पड़ा और वन में वायु खाता हुआ उनकी खोज करने लगा। उसने वन में भ्रमण करते-करते एक बड़ा आम का वृक्ष देखा, जिसमें फूल लगे थे; किन्तु उस पर कोई चिड़िया नहीं थी और उसमें सैकड़ों कीड़े बिलबिला रहे थे। कौण्डिन्य ने इस वृक्ष से पूछा कि तुमने अनन्त भगवान् को कहीं देखा है? उसने उत्तर दिया कि नहीं देखा। फिर

यह ब्राह्मण और आगे बढ़ा तो एक बछड़े सहित गाय देखी, जो वन में फिरती थी। ब्राह्मण ने इस गाय से भी वही प्रश्न किया और वही जवाब पाया। आगे एक बैल देखा, वह हरी-हरी घास चर रहा था, उससे भी वही सवाल किया और वही जवाब पाया। आगे बढ़ा तो दो मनोहर झीलें देखीं, जिनका पानी एक-दूसरे में हिलोरें मार कर जा रहा था और कमल और कुमुद से सुशोभित था। इनसे भी ब्राह्मण ने अनन्त भगवान् का पता पूछा और इन्होंने भी वही जवाब दिया कि हमें नहीं मालूम। आगे बढ़ा तो एक गदहा और एक मस्त हाथी खड़े देखे। इनसे ब्राह्मण ने पूछा—भाइयो, तुमने कहीं अनन्त भगवान् को देखा है? उन्होंने भी वही जवाब दिया। ज़ब सबसे वह निराश हो गया तो वहीं बैठ गया और फन्दा लगा कर मर जाने के लिए तैयारी करने लगा। यह देख कर वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण करके अनन्त भगवान् ने स्वयं उसका हाथ पकड़ लिया और उसको एक गुफा में ले गए। वहाँ पर उसे अनन्त भगवान् के नर-नारायण रूप के दर्शन हुए। ब्राह्मण ने साष्टाङ्ग दण्डवत् किया और उनसे कहा—महाराज, कोई उपाय बताइए, जिससे मेरा कष्ट दूर हो।

अनन्त भगवान् ने उत्तर दिया—तुमने मेरा अपमान किया था, इसी कारण तुम्हारी सम्पदा का नाश हुआ।

अब घर जाकर तुम चौदह वर्ष तक अनन्त भगवान् की पूजा करो, तो तुम्हारा पाप नाश होगा। ब्राह्मण ने इस पर फिर पूछा कि महाराज यह तो बताओ कि रास्ते में आम का वृक्ष, बैल, झील आदि जो मुझे मिले थे, वे कौन थे? इस पर वृद्ध ब्राह्मण ने कहा कि हे कौण्डिन्य! वह आम का वृक्ष पूर्वजन्म में वेद-विद्या-विशारद था। उसने शिष्यों को वेद-विद्या का ज्ञान नहीं दिया था, इसलिए इस जन्म में वृक्ष हुआ। और जो गऊ देखी थी वह भूमि थी; उसने पहले बीज हरण किया था। तुमने जो बैल देखा था, वह धर्म-रूप था, उसने यथावत् धर्म की व्यवस्था नहीं की थी, इसलिए बैल हुआ। जो दो झीलें थीं वे पहले दो बहिनें थीं, जो अपने-अपने पाप-पुण्यों को एक दूसरे से कहती थीं। इससे दोनों तलइयाँ हुईं। इन दोनों ने अतिथि, ब्राह्मण और दुर्बल को कभी भी भिक्षा नहीं दी। जो तुमने गदहा देखा था वह मूर्तिमान् क्रोध और हाथी का मद था। वह ब्राह्मण अनन्त भगवान् ही थे, और जो तुमने गुफा देखी वह संसार-सागर था। यह बात कह कर वह वृद्ध ब्राह्मण अन्तर्धान हो गया। कौण्डिन्य ने अपने घर को फिर सम्पदा और समृद्धि से परिपूर्ण देखा।

अन्नकूटोत्सव या गोवर्द्धनोत्सव

कार्तिक शुक्ल की प्रतिपदा को यह उत्सव होता है। इस दिन अन्नकूट भगवान् की पूजा होती है और गोवर्द्धन की भी पूजा की जाती है। सनत्कुमार-संहिता में यह लिखा है कि एक दिन कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को कृष्ण जी गऊ चराते-चराते गोवर्द्धन के निकट जाकर क्या देखते हैं कि सब गोप, ग्वाल और गोपियाँ गोवर्द्धन के चारों ओर इकट्ठे हैं और नाना प्रकार के भोजन वहाँ इकट्ठे कर रक्खे हैं। श्रीकृष्ण जी ने उनसे पूछा कि हे गोप-ग्वालो! तुम लोग इस समय किसका पूजन कर रहे हो?

उन्होंने उत्तर दिया कि हे कृष्ण! यह दिन इन्द्र की पूजा का है। बहुत दिनों से गोकुल में यह पूजा चली आती है। श्रीकृष्ण ने कहा कि भाई, यह तुम्हारी बड़ी भूल है कि जो देवता खाते नहीं, उन्हें तो तुम भोजन देते हो और जो खाते हैं, उन्हें भोजन नहीं देते। इस पर गोपों ने कहा कि हे श्रीकृष्ण! तुम ऐसा न कहो। इन्द्र हम लोगों को पानी देते हैं, हमें धन-धान्य और गऊ इन्हीं की कृपा से प्राप्त होती हैं। श्रीकृष्ण जी ने कहा कि यह बात भी ठीक नहीं है; क्योंकि तुम्हें साक्षात् अन्न देने वाला तो गोवर्द्धन

पर्वत ही है। यही तुम्हारे लिए जल की वर्षा करता है और तुम्हारी गौवों की रक्षा करता है। यह तुम्हारे भोजन को भक्षण भी करेगा। इसी की तुम पूजा करो। श्रीकृष्ण जी की यह बात सुन कर गोप-गोपीजन आपस में बातचीत करने लगे और यह सोचने लगे कि श्रीकृष्ण जी की बात मानें या न मानें। अन्त में यह निश्चित हुआ कि अगर गोवर्द्धन हमारे अर्पित भोजन को खा ले, तो श्रीकृष्ण जी की आज्ञानुसार इसकी पूजा की जाय और अगर न खाए तो इन्द्र की। इसलिए थोड़ी देर के बाद नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजन बना कर गोप-ग्वालों ने गोवर्द्धन के सामने रक्खा। फिर कृष्ण जी ने इनसे कहा कि हे ग्वालो! तुम अपनी आँखें मूँद कर गोवर्द्धन का ध्यान करो। जब ग्वालों ने आँखें मूँदीं, तो श्रीकृष्ण जी स्वयं गोवर्द्धन-रूप होकर सब भोजन खा गए। जब ग्वालों ने आँखें खोलीं, तो सब भोजन ग़ायब देख कर बहुत चकित हुए और बड़ी श्रद्धा से गोवर्द्धन की पूजा की।

नारद जी ने यह ख़बर इन्द्र को पहुँचा दी। इन्द्र यह सुन कर कि उनके स्थान पर गोवर्द्धन की पूजा हुई है, बड़े नाराज़ हुए और अपने यहाँ के बड़े-बड़े मेघों को यह आज्ञा दी कि जाकर गोकुल को बहा दो। थोड़ी देर में मूसलाधार वर्षा आरम्भ हो गई और सारा गोकुल व्याकुल हो गया। गोप-ग्वाल कृष्ण जी के पास त्राहि-त्राहि करते हुए पहुँचे।

कृष्ण ने कहा कि गोवर्द्धन की पूजा करो, गोवर्द्धन ही तुम्हारी रक्षा करेगा।

यह सुन कर सब गोप-ग्वाल और श्रीकृष्ण गोवर्द्धन के समीप आए और ज्योंही ग्वालों ने आँखें मूँद कर गोवर्द्धन का ध्यान किया, त्योंही श्रीकृष्णचन्द्र ने झट से गोवर्द्धन को अपनी उँगली से उठा लिया। सब गोप-ग्वाल उसके नीचे आ गए। इन्द्र ने ज़ोरों से वर्षा आरम्भ की, यहाँ तक कि गोकुल के अतिरिक्त और सारे गाँव नष्ट होने लगे। नारद जी ने यह सब समाचार ब्रह्मा जी से जा सुनाया और कहा कि इन्द्र सारी सृष्टि का नाश कर रहे हैं। ब्रह्मा जी यह समाचार सुन कर अपने हंस पर सवार होकर इन्द्र के पास आए और पूछा कि मृत्युलोक में क्या कोई दैत्य पैदा हो गया है, जो आप सृष्टि का नाश कर रहे हैं?

इन्द्र ने कहा नहीं, यह बात नहीं है। गोकुल-निवासियों ने हमारी पूजा का निरादर किया है, उनको हम दण्ड देना चाहते हैं। तब ब्रह्मा ने इन्द्र को श्रीकृष्ण का दर्शन कराया और कहा—देखो, जब साक्षात् विष्णु भगवान् श्रीकृष्ण का रूप धारण करके गोकुल की रक्षा कर रहे हैं, तो तुम उनका कैसे नाश कर सकते हो? यह सुन कर इन्द्र को पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने श्रीकृष्ण से क्षमा की प्रार्थना की।

इसके बाद श्रीकृष्ण ने कहा कि हे इन्द्र! तुम इन गोपों

को क्षमा करो और यह वर दो कि ये गोवर्द्धन की ही पूजा किया करें। इन्द्र ने इसको सहर्ष स्वीकार किया और उसी समय से अन्नकूट भगवान् और गोवर्द्धन की पूजा आरम्भ हो गई।

यमद्वितीया या भ्रातृद्वितीया

कार्तिक शुक्लपक्ष की द्वितीया को यमद्वितीया कहते हैं। इसके सम्बन्ध में यह कथा कही जाती है कि पहले किसी समय में यमुना जी नित्यप्रति यमराज से जाकर प्रार्थना करती थीं कि भाई, तुम मेरे घर अपने सब गणों के साथ भोजन करने को चलो। यमुना जी की इस प्रार्थना को यमराज टालते रहे। कभी कहते थे कि आज चलेंगे, कभी कल; किन्तु जब इसी तरह बहुत दिन बीत गए और यमराज नहीं आए, तो यमुना जी ने ज़बरदस्ती यमराज को अपने यहाँ बुलाया। जिस दिन यमराज यमुना जी के यहाँ आए, उस दिन कार्तिकी द्वितीया थी। यमुना जी ने अपने भाई यमराज का बड़ा सत्कार किया।

चलते समय यमराज ने अपनी बहिन से कहा कि कुछ माँगो! इस पर यमुना जी ने कहा कि भैया, मैं यही माँगती हूँ कि तुम प्रति वर्ष इसी दिन मेरे यहाँ भोजन करने आया करो। यमराज ने आने की प्रतिज्ञा की और यह भी कहा कि केवल इतना ही नहीं, इस दिन जो बहिन अपने भाई को बुला कर भोजन कराएगी, उसको वैधव्य कभी भी न होगा। हर एक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि इसी

दिन अपनी बहिन के यहाँ भोजन करे और बहिन को वस्त्र और आभूषण दे। जो बहिनें इस यमद्वितीया को यथा-विधि मनावेंगी, उनके भाई चिरायु होंगे।

अक्षयतृतीया



वैशाख कृष्ण-पक्ष की तृतीया को यह होती है। कहते हैं कि परशुराम इसी दिन पैदा हुए थे और त्रेता-युग का भी इसी दिन आरम्भ हुआ था। इस दिन तिलों से मृत पितरों का श्राद्ध किया जाता है। ब्राह्मण को इस दिन एक कलश जल, एक पङ्खा और एक जोड़ी जूता दान दिया जाता है, ताकि गरमी में स्वर्ग में यह चीज़ें उन्हें मिल जायँ। गर्मी इसी दिन से आरम्भ हो जाती है। इस दिन गौरी की अन्तिम पूजा भी होती है। सधवा स्त्रियाँ और कन्याएँ इस दिन गौरी की पूजा करती हैं और मिष्टान्न, फल और भीगे हुए चने बाँटती हैं।

व्रतराज में लिखा है कि किसी समय में एक महोदय नाम का वैश्य हुआ। उसने एक दिन किसी पण्डित के कथा कहते समय अक्षयतृतीया का माहात्म्य सुना कि यदि यह तृतीया बुधवार के दिन रोहिणी नक्षत्रयुक्त हो, तो यह अत्यन्त फल देने वाली होती है। महोदय वैश्य ने यह सुन कर गङ्गा में स्नान किया और पितृ-देवता का तर्पण किया। घर में आकर अन्नोदक सहित कटोरों का, पङ्खों का, अन्न, व्यञ्जन, छत्र सहित घटों का दान किया,

और जो, गेहूँ, लवण, सत्तू, दध्योदन और इक्षु-विकार (गुड़ के बने हुए पदार्थ) सुवर्ण सहित ब्राह्मण को दिए। जब यह वैश्य कुछ दिनों बाद वैकुण्ठवासी हुआ, तो इस व्रत के प्रताप से कुशवती नाम की नगरी में राजा हुआ और उसको अक्षय सम्पत्ति मिली। इसी से इस पर्व का नाम अक्षयतृतीया पड़ा।

सोमवती अमावस्या

जब अमावस्या सोमवार को पड़ती है, तब यह तिथि मनाई जाती है। पीपल के वृक्ष के नीचे जाकर सौभाग्यवती स्त्रियाँ वृक्ष की १०८ प्रदक्षिणा करती हैं। १०८ फल, मिष्टान्न या रुपए-पैसे लेकर इस दिन उसी वृक्ष के नीचे फेरी देती हैं। स्त्रियाँ इस दिन तेल नहीं छूतीं। दान की हुई चीज़ ब्राह्मणों को दी जाती है। सुहाग के पुष्ट करने और सन्तति-प्राप्ति के लिए यह व्रत किया जाता है।

इसके विषय में एक पौराणिक कथा है कि महाभारत-युद्ध के समाप्त हो जाने के बाद शर-शय्या पर पड़े हुए भीष्म के पास युधिष्ठिर ने जाकर कहा कि—हे पितामह! इस युद्ध में कुरुवंश के भी सभी मुख्य लोग मर गए। बचे हुए राजाओं को भी क्रोधी भीमसेन ने मार डाला, भरत-वंश में केवल हम ही शेष हैं। सन्तति के विच्छेद को देख कर हमारे हृदय को बड़ा सन्ताप होता है। उत्तरा बहू के गर्भ से उत्पन्न हुआ परीक्षित भी अश्वत्थामा के अस्त्र से दग्ध हुआ। इससे अपने वंश के नाश को देख कर मुझे दूना दुख है। हे पितामह! मैं क्या करूँ, जिससे

चिरञ्जीवी सन्तति प्राप्त हो। तब श्रीभीष्म जी ने उत्तर दिया कि जिस दिन सोमवार को अमावस हो, उस दिन पीपल के पास जाकर जनार्दन की पूजा और पीपल की १०८ परिक्रमा करे। १०८ ही रत्न या सिक्के या फल को लेकर प्रदक्षिणा करे। हे राजन्! यही व्रत तुम उत्तरा से कराओ, तब उसका मृत गर्भ जी जायगा और तीनों लोकों में विख्यात और गुणवान् होगा। तब युधिष्ठिर ने पूछा कि कृपा करके बतलाइए कि यह व्रत मनुष्य-लोक में किसने किया?

भीष्म जी ने उत्तर में कहा कि इस भूमि में कान्ति नाम की पुरी थी। उसमें रत्नसेन नाम का राजा राज करता था। वहाँ देवस्वामी नामक ब्राह्मण रहता था। इस ब्राह्मण की धनवती नाम की स्त्री थी। ब्राह्मण के इस पत्नी से सात पुत्र और एक कन्या पैदा हुई। लड़कों का तो विवाह हो गया था; किन्तु लड़की का विवाह नहीं हुआ था। ब्राह्मण योग्य वर की तलाश में था। एक दिन एक बड़ा तेजस्वी ब्राह्मण भिक्षा माँगने आया। बहुओं ने जब इस ब्राह्मण को पृथक्-पृथक् भिक्षा दी, तब उस समय इस ब्राह्मण ने उन्हें सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दिया; किन्तु जब गुणवती कन्या ने भिक्षा दी, तो उस ब्राह्मण ने 'धर्मवती हो' ऐसी आशीष दी। गुणवती ने अपनी माता से जाकर जो आशीर्वाद ब्राह्मण ने उसे और उसकी

भावजों को दिया था, कह सुनाया। माता ने उस ब्राह्मण के पास आकर इसका कारण पूछा कि गुणवती को सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद क्यों नहीं दिया? ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि गुणवती को भाँवर के समय ही वैधव्य प्राप्त होगा, इसलिए मैंने ऐसा वरदान दिया है।

उसके इस वचन को सुन कर धनवती को बड़ी चिन्ता हुई और बारम्बार प्रणाम करके ब्राह्मण से प्रार्थना की कि इसका कोई उपाय बताइए; तब भिक्षुक ने कहा कि जब तेरे घर में सोमा आए, तो उसी समय उसके पूजन से वैधव्य का नाश होगा। धनवती ने पूछा कि सोमा कौन जाति है और कहाँ रहती है? ब्राह्मण ने कहा कि यह जाति की धोबिन है और सिंहलद्वीप की रहने वाली है। वह जब आवेगी, तब तेरी लड़की का वैधव्य भङ्ग होगा।

यह कह कर ब्राह्मण भिक्षा माँगता-माँगता अन्यत्र चला गया। माता ने अपने पुत्रों को बुला कर कहा कि तुम लोग अपनी बहिन गुणवती को साथ लेकर सिंहलद्वीप जाओ और सोमा को बुला लाओ। लड़कों ने दुर्गम मार्ग की चिन्ता करके जाने से इन्कार कर दिया; किन्तु पिता के कुपित होने पर शिवस्वामी नाम का सबसे छोटा लड़का अपनी बहिन को लेकर रवाना हो गया। बहुत दिन सफ़र करने के बाद वह समुद्र के तट पर पहुँचा और वहाँ से समुद्र को पार करने की चिन्ता करने लगा। समुद्र के तट

पर ही एक बट का वृक्ष था। उस वृक्ष पर गिद्ध ने अपने बच्चे रख छोड़े थे। उसी वृक्ष के नीचे बैठ कर गुणवती और शिवस्वामी ने सारा दिन व्यतीत कर दिया। सायङ्काल को गिद्ध जब अपने बच्चों को चारा चुगाने लगा, तो बच्चों ने नहीं खाया। कारण पूछने पर बच्चों ने कहा कि जब तक वृक्ष के नीचे बैठे हुए दोनों मनुष्य भोजन नहीं करते, तब तक हम लोग भी भोजन नहीं करेंगे। इस पर गिद्धराज ने आकर शिवस्वामी से उनका वृत्तान्त पूछा। मालूम होने पर गिद्धराज ने उन्हें दूसरे दिन प्रातःकाल सोमा धोबिन के यहाँ पहुँचा देने का वचन दिया।

दूसरे दिन अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार गिद्धराज ने गुणवती और शिवस्वामी को सिंहलद्वीप में सोमा धोबिन के यहाँ पहुँचा दिया। यह दोनों सोमा धोबिन के घर में साल भर तक बराबर दास-दासी का काम करते और घर लीपते-बुहारते रहे। घर की असाधारण सफ़ाई देख कर सोमा ने एक रोज़ पूछा कि आख़िर मेरे घर की नित्य-प्रति सफ़ाई कौन कर जाता है। बहुओं ने कहा हम नहीं जानतीं, हमने स्वयं तो कभी बुहारी दी नहीं और न लीपा। एक दिन छिप कर देखा, तो ब्राह्मण-कन्या को घर के आँगन की बुहारी देते हुए और ब्राह्मण-बालक को लीपते हुए पाया। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने इनसे पूछा—ब्राह्मण होकर तुम इस प्रकार शूद्र की सेवा क्यों करते हो?

उन्होंने अपनी कथा सुनाई और उससे प्रार्थना की कि वह उनके साथ चले। सोमा चलने पर राज़ी हो गई। चलते समय उसने अपने घर के स्त्री-पुरुषों को यह आदेश दिया कि मेरी अनुपस्थिति में यदि कोई मर जाय, तो उसको ज्यों का त्यों रखना। सोमा गुणवती के घर आई। गुणवती का विवाह रुद्र शर्मा से निश्चित हो चुका था। भाँवरें हो ही रही थीं कि रुद्र शर्मा का एकदम प्राणान्त हो गया। सारे घर में रोना-पीटना होने लगा; किन्तु सोमा को ज़रा भी चिन्ता नहीं हुई। उसने गुणवती को व्रतराज का फल सङ्कल्प करके दिया, जिसके प्रभाव से रुद्र शर्मा निद्रा से जागने के समान उठ खड़ा हुआ।

जब सोमा अपने घर वापस आई, तो यहाँ उसके पुत्र, स्वामी और दामाद सब मर चुके थे। उस दिन सोमवती अमावस्या थी, जिसे मृत सञ्जीवनी तिथि भी कहते हैं। रास्ते में उसे एक स्त्री रूई से लदी हुई मिली, जो दबी जा रही थी। उसने सोमा से बहुत प्रार्थना की कि बोझ में कुछ सहारा दे दे; किन्तु सोमा ने इन्कार कर दिया और कहा कि आज सोमवती अमावस्या है, इस दिन रूई या मूली कुछ भी नहीं छुई जाती।

सोमा ने तुरन्त ही पीपल के वृक्ष के नीचे जाकर हाट में शकर लेकर वृक्ष की १०८ प्रदक्षिणाएँ कीं और विष्णु भगवान् का पूजन किया। पूजन के प्रभाव से उसके पुत्र,

दामाद और कन्या भी जी उठे। सोमा जब अपने घर आई, तो सारा हाल सुना। बहुओं ने अपने कुटुम्बों के मरने और उनके फिर से जीने का कारण पूछा, तब उसने बताया कि मैंने गुणवती कन्या को, जिसका सुहाग खण्डित था, व्रतराज का फल प्रदान किया, इससे उसका वैधव्य तो नष्ट हो गया, पर मेरे कुटुम्ब का सुहाग जाता रहा। जब सोमवती अमावस्या की पूजन किया, तब उसके प्रभाव से पहले की तरह फिर हो गया। इसी समय से इस पर्व का प्रचार हुआ है और आज हिन्दू-मात्र इसे मानते हैं!

समाप्त